हम सबला

जागोरी की त्रैमासिक पत्रिका
अक्तूबर–दिसम्बर 2010

इस अंक में
कलम भी परचम भी

गिरना
हमारे
हाथों में
नहीं था
उठना
हमारे
हाथों में
है

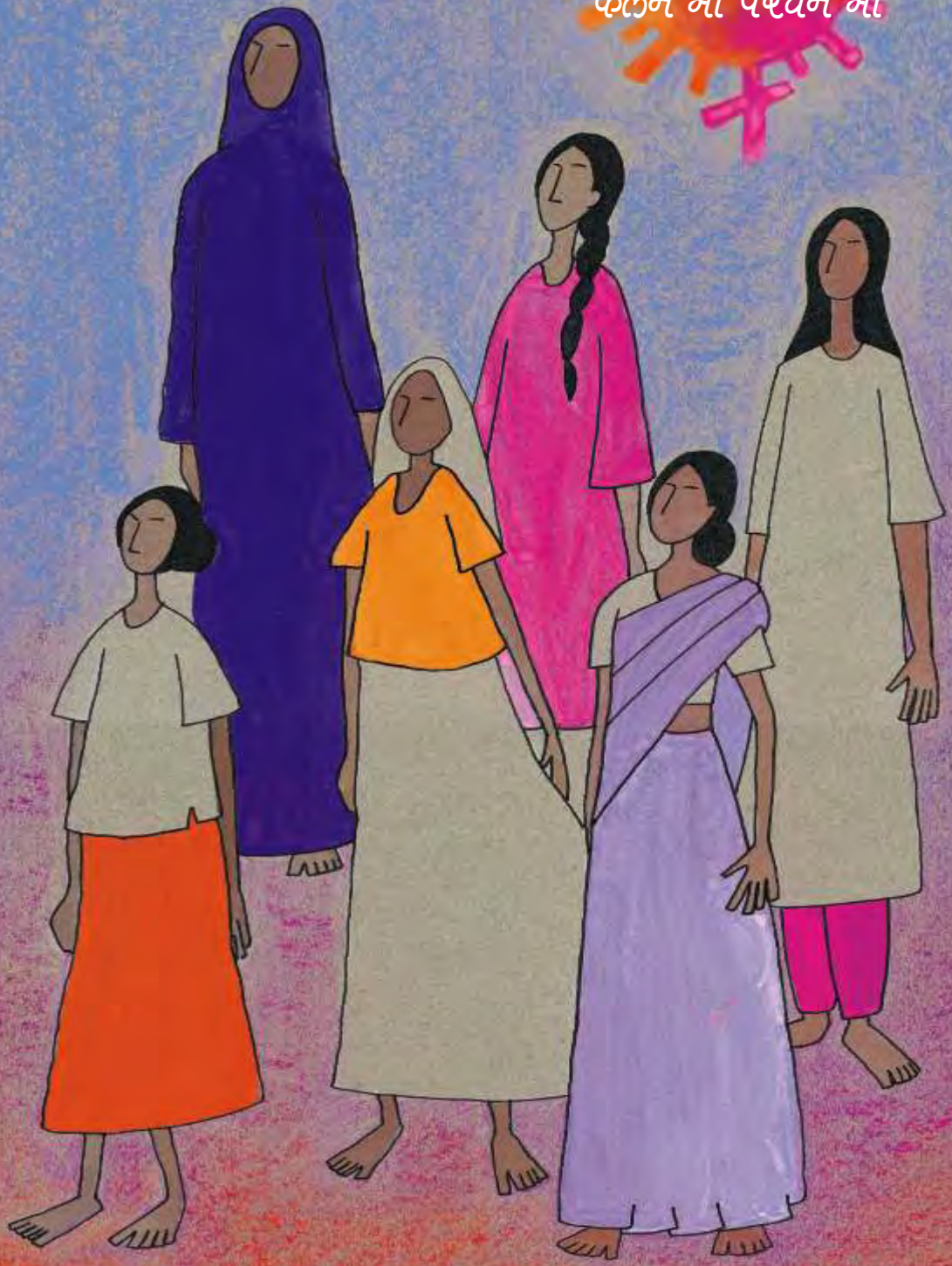

हम सबला

अक्तूबर-दिसम्बर 2010

अतिथि संपादक
अनामिका

संपादन एवं अनुवाद
जुही जैन

संपादन सहयोग
जया श्रीवास्तव
कल्याणी
खुर्शीद अनवर
सीमा श्रीवास्तव
रत्नमंजरी

कवर्स
बिंदिया थापर व कमला भसीन

इस अंक में शामिल अधिकांश पोस्टर्स जुबान प्रकाशन 'पोस्टर विमेन' से लिए गए हैं।

जागोरी द्वारा प्रकाशित पोस्टर्स की संकल्पना व उनमें रचनात्मक लेखन कमला भसीन के हैं।

सज्जा व मुद्रण: सिस्टम्स विज़न
systemsvision@gmail.com

बी-114, शिवालिक, मालवीय नगर
नई दिल्ली 110017
ई-मेल @jagori.org
वेबसाइट www.jagori.org
दूरभाष 26691219, 26691220
हेल्पलाइन 26692700

इस अंक में

हमारी बात — अनामिका — 1

कविताएं

- प्रतिरूप — स्नेहमयी चौधरी — 4
- कोशिश — सुशीला टाकभौरे — 4
- खटनी — ज्योति लांजेवाल — 9
- चिल्लर — गीता हिरण्यन (तमिल) — 10
- रोजी — अमृता प्रीतम — 10
- मास्टर की छोरी — प्रतिभा सक्सेना — 11
- आश्रय — करुणानिधि (तमिल) — 12
- बाप की टोपी — रेखा यादव — 13
- उदासी — नीलेश रघुवंशी — 14
- बिटिया और लोरी — प्रवासिनी महाकुंड (उड़िया) — 15
- संशय में पड़ी मां — ऊषा यादव — 16
- वह तोड़ती पत्थर — सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' — 17
- बेजगह — अनामिका — 18
- इस समय — नीलेश रघुवंशी — 19
- विसंगतियां — कान्ता गोगिया — 19
- दिहाड़ी — अनामिका — 20
- अग्निप्रवेश — करुणानिधि (तमिल) — 20
- मध्यवर्गीय गार्गी — इंदिरा संत (मराठी) — 21
- पुत्रमोह — निर्मला गर्ग — 22
- भट्टी/काजल — ऊषा उपाध्याय (गुजराती) — 23
- एक सवाल — हिमजा (तेलुगू) — 24
- मंकेन पूवु (पलाश का फूल) — चल्लापल्ली स्वरूपारानी (तेलुगु) — 25
- प्यार में डूबी हुई मां — पवन करण — 26
- तुम्हारा साथ — कमला भसीन — 27
- मेरे भीतर कई औरतें — प्रवासिनी महाकुंड (उड़िया) — 28
- यह न सोचो कल क्या हो — महज़बीन बानो — 30
- अन्तर — बिलु सी. नारायण (तेलुगु) — 31
- अड़ियल मन विद्रोही — आराधना चतुर्वेदी 'मुक्ति' — 37
- ....अन्त में — जुही — 39
- पाठकों की प्रतिक्रियाएं — 40

कलम का स्त्रीवादी प्रतिरोधः

एक हाथ में आग, दूसरे में पानी का मटका

देश और दुनिया के अलग-अलग कोनों में, चौका-दालान के पिछवाड़े थोड़ी-सी जगह और थोड़ा-सा वक्त चुराकर चलती हुई सुइयां-सलाइयां, कलम और कूंचियां, मीरा के घुंघरुओं की ठनकार से ठनकते घुंघरु, तानपूरे और अन्य वाद्य-यंत्र, सहकारी समितियों के सुन्दर उत्पाद-फुलकारियां, मिट्टी के बरतन, हैंडलूम की साड़ियां, कांसे की मूर्तियां, हस्त-करघा उद्योग की सब सुन्दर और उपयोगी चीज़ें—स्त्री के कला जगत की धरोहरें अनेक हैं। 'कला' और 'क्राफ्ट' का पदानुक्रम स्त्रियों ने तोड़ा है— समाज के लिए सबसे बड़ी क्रांतिकारी चुनौती यही है।

कलाविद् पुरुषों के यहां ललित कलाएं बस पांच ही हैं— काव्यकला, चित्रकला, संगीत और नृत्यकला, भवननिर्माण और वास्तुकला। जो अन्य चौंसठ कलाएं थीं— उनमें चौर कला को भी कला का दर्जा मिला था। पाक-कला जैसी कुछ व्यावहारिक कलाएं निचले पायदानों पर बैठी कला-दासियों की तरह बरती गयीं और स्त्री जगत् से ही रूढ़ कर दी गयी थीं।

सभी कला माध्यमों में प्रयोग हुए हैं। स्त्रीवादी प्रतिरोध भी प्रायः हर जगह दर्ज है, पर मेरी पात्रता नहीं है कि सब कलाओं के स्त्रीवादी प्रतिरोध पर टिप्पणी करूं। कविता की मज़दूरनी हूं। थोड़ी सी बात कविता की ही करूंगी।

कथ्य और शैली जुड़वां भाई-बहन हैं, दोनों साथ जनमते हैं, पर जन्म के पहले ही दोनों में भेदभाव शुरू हो जाता है। कथ्य पुलिंग है। उसका दर्जा शैली से ऊंचा माना जाता है। ज़्यादा चर्चा कथ्य की होती है। क्या कहा गया, इसकी सुध कोई जल्दी नहीं लेता। किंतु मौलिक तो शिल्प ही होता है, कथ्य या दर्शन तो हमेशा दिमाग में रहता है। पर 'कैसे कहा गया', यह अक्सर किसी और शास्त्र या तथ्यगत अनुसंधान से घूमता-टहलता हुआ आता है। कोई अनुसंधान हुआ, किसी मनोसामाजिक रहस्य से पर्दा उठा तो उसके साए में आप इगैलिटेरियन समाज या कल्याणकारी राज्य, शांति और सद्भाव, समग्र राष्ट्रवाद काउंटर-हेजेमॉनिक राजनीति या करुणासंबलित न्याय-दृष्टि की बात करेंगे। पर बात तो वही होगीः न्याय, समता, स्वाधीनता, भातृत्व/बहनापे। की कोई-न-कोई मानवाधिकार रेखांकित तो होगा उस स्वप्न लोक में जिसका निर्माण हम करने चले हैं!

साहित्य में 'क्या' से ज़्यादा 'कैसे' महत्त्वपूर्ण होता है। सत्यम् शिवम् जब तक सुन्दरम् नहीं बनता— साहित्य उन्हें तब तक दूर से चुमकार देता है, लेकिन गोदी नहीं उठाता। साहित्य के आंगन में शिल्प और कथ्य 'एस्थेटिक्स' और 'एथिक्स' कहलाते हैं। कम-से-कम वह दोनों में भेदभाव नहीं मानता। साहित्य में 'टोन', 'टेक्सचर' और 'टिम्बर' की टनकार हमेशा बुलन्द रहती है। स्त्री साहित्य विश्व-भर में अपनी महीन

और तिरछी लड़ाई भाषिक औज़ारों और स्थापनाओं से ही लड़ रहा है— 'ऊधव शतक' या 'भ्रमरगीत' में गोपियों का व्यंग्य-विनोद हो या शादी में गालियां गाती हुई औरतों का लौंगिया चरपरापन– अक्सर यहां भी 'क्या कहा गया'— इससे ज़्यादा महत्वपूर्ण और बेधक हो जाता है कि 'कैसे कहा गया'। कई बार 'क्या' का अर्थ भी 'कैसे' से ही खुलता है।

बंगला उपन्यासों की त्यागमयी बड़ी या मंझली दीदी हो या हिन्दी उपन्यासों और फ़िल्मों की भोली–भाली, अल्हड़ छुटकी बहन–भाइयों को जैसे बहनें अपना आंचल उढ़ाए रखती हैं— स्त्री-साहित्य में एक झीना-सा दुकूल, एक कवच, कथ्य को स्त्रियों की भाषा–शैली उढ़ाए रखती है। विषय तो वही गिनती के आठ-दस हैं: मातृत्व, बहनापा, विस्थापन, घर, बच्चे, उत्तराधिकार, प्रेम और मृत्यु, ब्रीदिंग स्पेस पर्यावरण, वर्ण वर्ग–लिंग–नस्लगत शोषण से मुक्त एक समतापूर्ण समाज वगैरह। बस बात कहने की शैली निराली है। पदानुक्रम-मुक्त जिस प्रजातांत्रिक मॉडल का सपना स्त्री-साहित्य जगाता है, स्त्री–भाषा वही मॉडल प्रतिबिम्ब करती है! उस भाषा में फटकार नहीं, कंधे पर हाथ रख 'जोई-सोई कछु गा लेने' का मीठा शऊर रचा–बसा है।

रेडियो-टीवी सिनेमा वगैरह की ध्यानस्थ श्रोता होने के कारण स्त्रियां अपनी कविता में सिनेमेटोग्राफिक तकनीकों का सर्जनात्मक उपयोग करती हैं। विज्ञापन फ़िल्मों में भी इन तकनीकों का काव्यमय उपयोग होता है। किन्तु जहां उद्देश्य उत्पाद बेचना हो, वहां कविता वाला प्रभाव तो नहीं बन सकता। कविता एक लघु उद्योग है जिसमें नफ़ासत बहुत चाहिए। चावल पकाने के पहले जैसे कंकड़ चुनने होते हैं, कविता पकाने के पहले भी! आपबीती में जगबीती मिलाई जाती है अंदाज़ से!

आपस की गपशप से लेकर रेलवे स्टेशन, बस, पंचायत की बातचीत तक, बाज़ार-चौका से लेकर मिथकीय संसार तक फैले शब्द और संदर्भ स्त्री कविता में एक-दूसरे के पास चुंबकीय आकर्षण से बढ़े आते हैं और आपस में झप्पी–सी ले लेते हैं।

विश्वयुद्ध के बाद पश्चिमी दुनिया में नर्सिंग और शिक्षण निकायों का स्त्रीकरण हुआ था। भूमंडलीकरण के आसपास आर्थिक, व्यावसायिक और राजनीतिक विस्थापन घटित हुए और पता नहीं कैसे यह हुआ कि धड़-धड़-धड़ाधड़ कविता का इस्तेमाल तम्बू, मकान और झुग्गी के रूप में करने लगी औरतें। जन्म से बेघर, न मायके की अपनी, न ससुराल की, न गेह की अपनी, न देह की, अपने ही घर से निष्कासित और कभी-कभी सीता, बेनज़ीर या तस्लीमा की तरह अपने वतन से भी। धूप, हवा, माटी और पानी की तरह हर तरफ बिखरीं। फिर भी कहीं की नहीं-अंततः बसीं लेकिन बसीं कहां? बे-दरो-दीवार के घर–कविता में।

भाषा अब स्त्री के सर के ऊपर की एकमात्र छत थी, उसका एकमात्र आश्रय। कवयित्रियों (लल्लदेड, अण्डल, अक्का महादेवी, मीरा और जनाबाई) ने भी घरनिकासी का दुःख भोगा था, पर उनको तो 'रामनाम की मणिक अटारी' मिल ही गयी थी। बीसवीं शती में इस 'मणिक अटारी' की नींव भी हिली और तब भाषा के सिवा कोई आश्रय रहा ही नहीं। हृदयहीन अनाचारियों की समझ में कविता नहीं आती क्योंकि उनके पास काव्य-भाषा का अर्थ समझने का धीरज नहीं होता। और इसी तरह कविता बनती है एक सुरक्षित-सी जगह जहां 'खग जाने खग ही' की भाषा जिसे समदुखभोगी ही पार कर पाते हैं। तो कविता के भविष्य को लेकर चिन्तित रहने वाले कृपया चिन्ता करना छोड़ दें। खिलखिला उठेगी अब यह बस्ती, बस जाएगा अब यह उजड़ा दयार! स्त्रियां न बसने वाली जगहों में कभी नहीं जातीं।

1990 के बाद एक साथ बहुत-सारी स्त्रियां अपनी जगह से उखड़कर महानगर आयीं- हर वर्ग, नस्ल, जाति-धर्म की स्त्रियां। कभी-कभी पतियों के पीछे, कभी-कभी डिग्री या रोज़गार की तलाश में अकेली। कामकाजी महिला हॉस्टल आबाद हो गये। विश्वविद्यालय के आस-पास की सारी बरसातियां मालती-लता-सी गुच्छा-गुच्छा फूल गयीं। राजनीतिक पार्टियों के दफ्तर भी स्त्री कार्यकर्त्ताओं के लिए खुले।

ज़्यादातर लोग समझते हैं कि 'नई स्त्री' दिल और घर तोड़ने में माहिर है। जबकि सच यह है (और इसका पता आपको कविताओं में मिलेगा) कि 'नई' स्त्रियां पारम्परिक दायित्वों के साथ नई ज़िम्मेदारियां भी ओढ़े हैं। पहले की स्त्रियां तन-मन से सेवा करती थीं पर केवल अपने परिवार की। आज की स्त्रियां तन-मन-धन से सेवा करती हैं पर सिर्फ़ अपने परिवार की नहीं— परिजन, पुरजन, पर्यावरण और समाज की भी। बदले में चाहती हैं स्नेह-सम्मान और अनवरत चलने वाले अपमान चक्र से मुक्ति। पुरुष यदि यह भी नहीं देगा तो 'पिया मोर बालक हम तरुनी' की स्थिति घिर आएगी। नैतिक कद-काठी और परिपक्वता का धरातल तो एक होना ही चाहिए! 'घर का सबसे ज़िद्दी बच्चा' ही बने रहेंगे पुरुष तो मर्दानगी ही खटाई में पड़ जाएगी।

थकी-हारी स्त्रियों को अन्य स्त्रियों का कंधा मिला तो एक नये रस का परिपाक हुआ जो प्यार, शांति और संवेदना से बना था। इस रस का नाम था बहनापा— जो किसी भी वर्ग, किसी भी वर्ण, किसी भी धर्म या नस्ल की अनजान स्त्रियों के बीच भी एक रोशनी का पुल बना देता है। कविता भी बस इसी पुल का काम करती है।

फ्रांसीसी क्रान्ति ने जो तीन प्रजातान्त्रिक स्थापनाएं की थीं- उनमें 'बराबरी' और 'स्वाधीनता' के साथ ही 'भाईचारा' शामिल था। पर 'भाईचारे में 'बहनापा' शामिल नहीं था। यह शामिल हुआ स्त्री आन्दोलन के ज़ोर से— आन्दोलन जो 'विशिष्ट' स्त्रियों की ही मुक्ति नहीं चाहता था, वह चाहता था नून-तेल, हल्दी, फैक्टरी, खेत-खलिहान, चकला-घर, साधारण क्लर्की में फंसी हुई, तीन-तीन पालियां खटती हुई आम स्त्री की आज़ादी। दायित्वों से नहीं, पूर्वाग्रहों से, अपमान-शृंखलाओं से और उसके श्रम-दोहन से।

इसके प्रभाव में तीन-चार तरह की कविताएं लिखी गयीं- अस्तित्ववादी रंग की जो वजूद पर एक नफीस दस्तक देती थीं। गगन-गिल, तेजी ग्रोवर, ज्योत्सना मिलन, सुनीता जैन, अनीता वर्मा और इला कुमार की कविताएं इस रंग की कविताएं कही जा सकती हैं। दूसरी हैं, वे कविताएं जिनका आंचल जातीय स्मृतियों, मिथकीय संरचनाओं और ग्राम्य बालाओं की महीन विट् से भरा है। लोकरंगराती ये कविताएं कीर्ति चौधरी, नीलेश, संध्या गुप्ता ने लिखी हैं। तीसरे रंग की कविताएं स्त्रीवादी दलीलों से बौद्धिक संवाद कायम करती हुई सी कविताएं हैं- स्नेहमयी चौधरी, अर्चना वर्मा, ममता कालिया, इन्दु जैन, कमल कुमार, सविता सिंह आदि की कविताएं। चौथे रंग में राजनीतिक जज़्बे की मुखर कविताएं हैं— कात्यायनी, निर्मला, रमणिका गुप्ता, शुभा, शीला सिद्धांतकर और मंजरी की खुली-खिली कविताएं जिनमें मां व पिता की मीठी डांट दिपदिपाती है। इस अंक में हमने प्रायः सब रंग की कविताएं शामिल करने की कोशिश की है- हिन्दी की प्रमुख कवयित्रियों से आप परिचित ही हैं। थोड़ा सा परिचय हिन्दीतर कविता से भी हो जाए इसका ध्यान रखा है।

निराला की कविता में जो मज़दूर-हाथ पत्थर तोड़ रहे थे, जो पथराई आंखें मार खा रोई नहीं थीं- यह उन आंखों, उन हाथों की कविताएं हैं। कामकाजी स्त्री की कलाइयों की तरह ये सूनी पर मज़बूत हैं। कोई अलंकरण नहीं है। यहां मधुर-मधुर दीपक नहीं जलता। एक बिजली-सी कड़कती है तड़-तड़-कड़ और भाषा के पत्थर दरक जाते हैं। फिर पत्थर से कविता का साझा घर बन जाता है, कोई नक्काशी नहीं, लेकिन आसरा, साझा-सा सब बेसहारों का।

–अनामिका

इस वर्ष पद्मश्री सम्मान (साहित्य व शिक्षा) पाने वाली महिलाओं में दिल्ली की ऋतु मेनन व उर्वशी बुटालिया को शामिल किया गया है। वे दोनों भारत की प्रथम नारीवादी प्रकाशन 'काली फॉर विमेन' से जुड़ी रही हैं। आजकल ऋतु 'विमेन अनलिमिटेड' तथा उर्वशी 'जुबान' प्रकाशन में सक्रिय हैं। हम सबकी ओर से ढेरों बधाईयां।

प्रतिरूप

कभी-कभी मेज़ पर रक्खी किसी चीज़
या दरवाज़े पर लटकते ताले
को देखकर लगता है
यदि इसे न हटाया जाये तो
सालों तक वे सब
वहीं पड़े रहेंगे।

बहुत पहले 'स्टिल लाइफ़' की
एक पेटिंग देखी थी,
'फलों की टोकरी'
या 'फूलों का गुच्छा'
जैसा चित्र में अंकित था
वैसा ही रहेगा।

वे सब मुझे
अपने प्रतिरूप क्यों लगते हैं?

–स्नेहमयी चौधरी

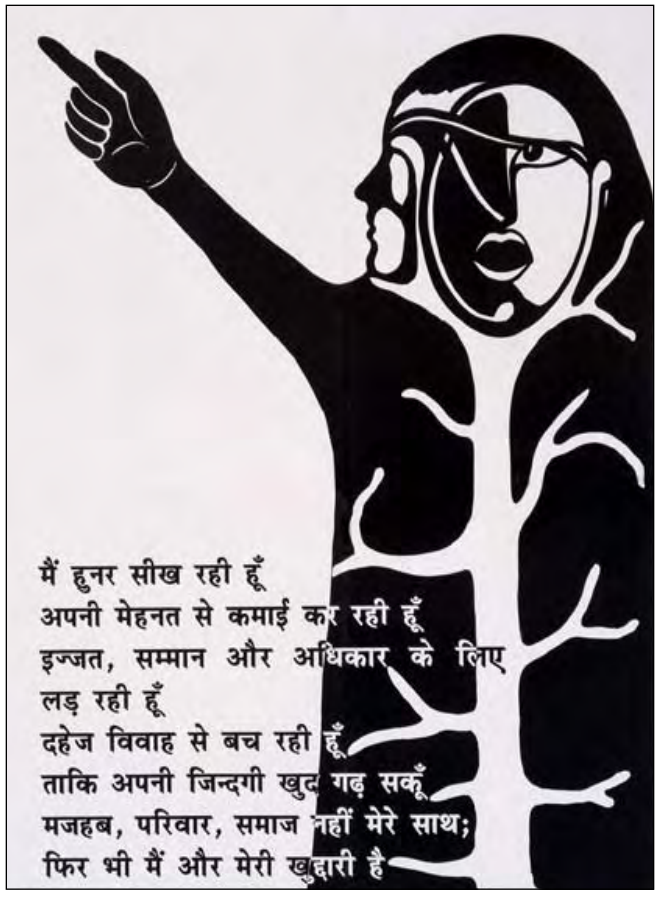

विषयः महिला सशक्तता • प्रस्तुतिः महिला जागरण केंद्र, पटना

विषयः काम का बोझ व महिला स्वास्थ्य पर गुजरात में बनाया पोस्टर • प्रस्तुतिः अज्ञात

कोशिश

***जब** एक स्त्री कोशिश करती है*
लिखने की, बोलने की, समझने की
सदा भयभीत ही रहती है
मानो पहरेदारी करता हुआ कोई
सर पर सवार हो।
पहरेदार जैसे एक मज़बूत औरत के लिए
एक ठेकेदार,
खरीदी सम्पत्ति के लिए चौकीदार
लिखते समय कलम को झुका ले
बोलते समय बात को संभाले,
समझने के लिए सबके दृष्टिकोण से देखे
क्योंकि वह स्त्री है!

–सुशीला टाकभौरे

विषय: महिलाओं के खिलाफ़ हिंसा • *चित्र: गोलक खंडुआल* • *प्रस्तुति: लॉयर्स कलेक्टिव, नई दिल्ली*

विषयः दहेज विरोध • प्रस्तुतिः अज्ञात

विषयः दहेज विरोध • प्रस्तुतिः समान सशक्त महिला आंदोलन, बुंदेलखंड

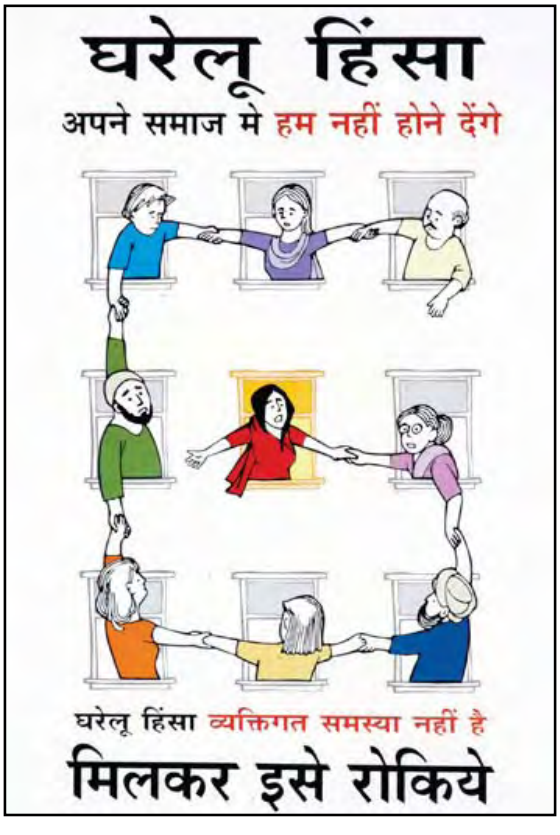

विषयः घरेलू हिंसा का सामूहिक विरोध • प्रस्तुतिः स्वयं, कोलकाता

विषयः महिलाओं के ख़िलाफ़ हिंसा • चित्रः बिंदिया थापर • प्रस्तुतिः जागोरी, नई दिल्ली

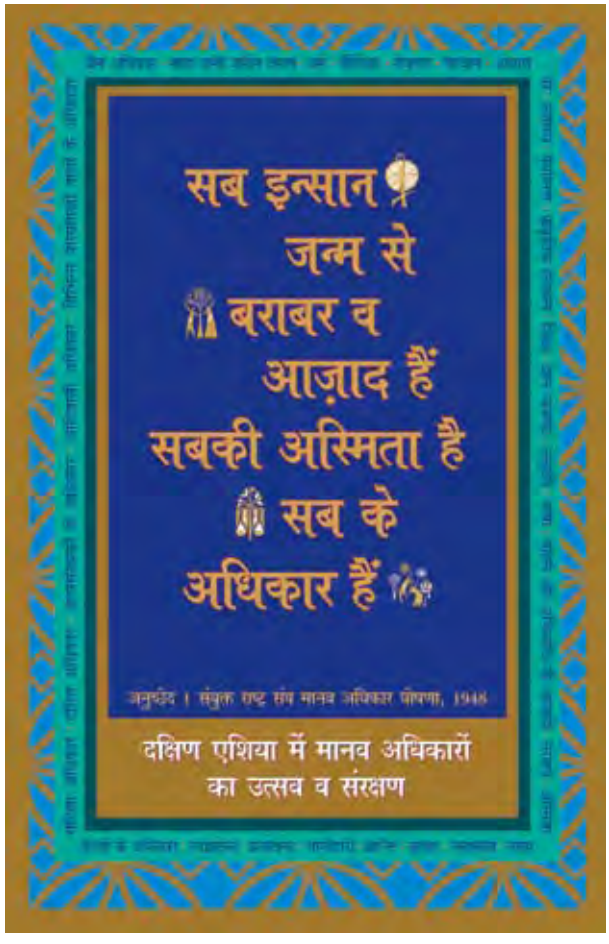

विषयः मानव अधिकार • *डिज़ाइनः बिंदिया थापर • प्रस्तुतिः संगत, नई दिल्ली*

विषयः मानव अधिकार • *बिंदिया थापर के सहयोग से पुनर्प्रकाशित -- जस्टिस लीला सेठ लिखित व बिंदिया थापर द्वारा चित्रित पुस्तक*
वी द चिल्ड्रन ऑफ़ इण्डिया एण्ड द प्रीएम्बिल टू आवर कॉनस्टीटयूशन *से साभार*

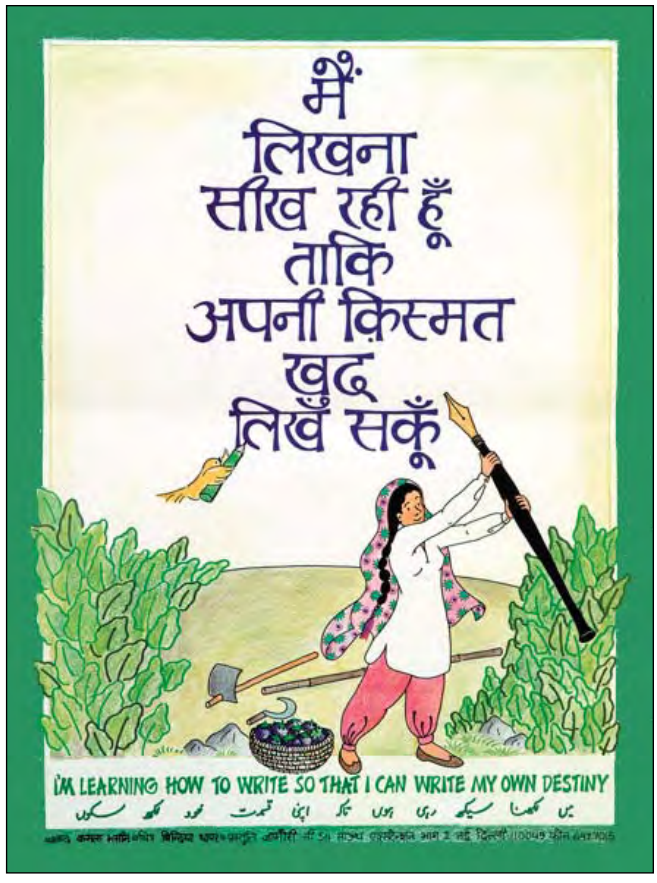

विषयः शिक्षा से महिला सशक्तिकरण • चित्रः बिंदिया थापर • प्रस्तुतिः जागोरी, नई दिल्ली

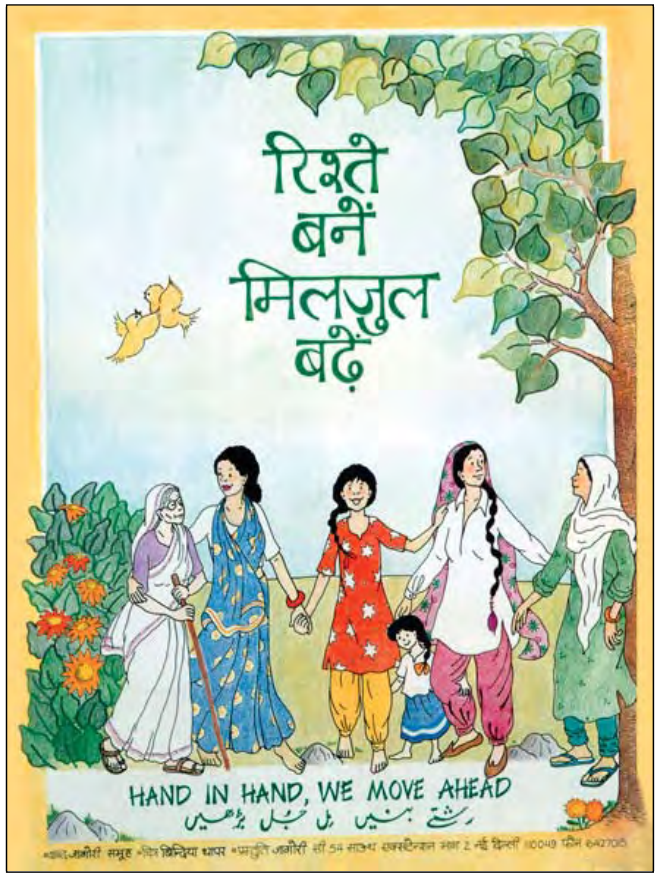

विषयः महिला शिक्षा • *प्रस्तुतिः सेवा मंदिर, राजस्थान*

खटनी

दिन भर की अचूक
खटनी के बाद
आंचल का छोर खोलकर
कहती है मज़दूरनी अपने
बच्चे से
ले पांच पैसे, जो भी खा
सकता है, खा
लेकिन अम्बेडकर की तरह
स्कूल तो ज़रूर जा।

–ज्योति लांजेवाल

चिल्लर

ये लड़कियों को
चिल्लर की तरह
अपनी गुल्लक में
इकटठा करना चाहते हैं।
बंधे नोट से अटकता है
उनका खर्चा-पानी
क्योंकि बंधा नोट वे
बांध कर रखना चाहते हैं
अपनी जेब में।
और लड़कियां रेज़गारी की ही तरह
गुल्लक फोड़कर
बढ़ जाती हैं आगे
एक बंधा नोट बनने के लिए!

–गीता हिरण्यन
(मूल तमिल से अनूदित)

रोजी

नीले आसमान के कोने में
रात-मिल का साइरन बोलता है
चांद की चिमनी में से
सफेद गाढ़ा धुआं उठता है
सपने-जैसे कई भट्ठियां हैं
हर भट्ठी में आग झोंकता हुआ
मेरा इश्क मज़दूरी करता है
तेरा मिलना ऐसे होता है
जैसे कोई हथेली पर
एक वक्त की रोजी रख दे।
जो खाली हांडिया भरता है
रांध-पकाकर अन्न परसकर
वही हांडी उलटा रखता है
बची आंच पर हाथ सेकता है
घड़ी पहर को सुस्ता लेता है
और खुदा का शुक्र मनाता है।
रात-मिल का साइरन बोलता है
चांद की चिमनी में से
धुआं इस उम्मीद पर निकलता है
जो कमाना है वही खाना है
न कोई टुकड़ा कल का बचा है
न कोई टुकड़ा कल के लिए है...

–अमृता प्रीतम

विषयः महिला सशक्तता • प्रस्तुतिः राष्ट्रीय ज्ञान-विज्ञान केंद्र, शिमला

मास्टर की छोरी

विद्या का दान चले जहां खुले हाथ
कन्या तो और भी सरस्वती की जात
और सिर पर पिता मास्टर का हाथ।

कंठ में वाणी भर, पहचान लिये अक्षर
शब्दों की रचना, अर्थ जानने का क्रम
समझ गई शब्दों के रूप और भाव
और फिर शब्दों से आगे पढ़े मन
जाने कहां-कहां के छोर

गहरी-गहरी डूब तक
बन गया व्यसन।

किसी को भी नहीं खला, कभी-कमी नहीं पड़ी
यें ही बड़ी होती रही
मास्टर की छोरी।

एक दिन किसी ने कहा, उनके पास है
ही क्या सिवा
फालतू की बातों के और इन किताबों के
क्या अचार डलेगी
रीत भांत दुनिया से कोरी
मास्टर की छोरी।

बुरा लगा, हुई दुखी, जान गई अपना सच
साध लिया बिछला मन
दुनिया को समझ रही
अपने से ही परख रही
मास्टर की छोरी।

ब्याह गई
नये लोग, नये ढंग
बड़े कमरों वाला मकान, लोक व्यवहार
सभी साज और सिंगार
लेकिन किताबों बिन
सूनी सी लगतीं रहीं, भरी अल्मारियां।

चाह उठे बार बार
कभी एकांत खोज, मन चाही किताब खोल
पास धर लाई-चना-देर तक
पढ़ती रहे शांत
चुपचाप कहीं रूके अनायास
कुछ सोचती या गुनती रहे
मास्टर की छोरी।

पढ़ती सभी के मन, करने लगी जतन
साथ ले अकेलापन, कौन जाने वह चुभन
पाट नहीं पा रही
भीतर और बाहर के बीच बसी दूरी
मास्टर की छोरी।

–प्रतिभा सक्सेना

आश्रय

दिनभर के काम के अन्त में
थकावट के साथ
प्रतीक्षा करती हूं मैं
रजतपट से
किराए पर मिलते
सपनों के लिए।

पिता के आदेश पर
स्कूल में दाखिल हुई
मैंने बाल संवार लिए
कुछ दोस्तों को भुला दिया।

कमीज़ पहन ली
दादुन की
प्रार्थना की।

पर आज भी
प्रतीक्षा कर रही हूं
अपनी बारी की

–करुणानिधि

मूल तमिल से सोलजी के थॉमस द्वारा अनूदित

***विषयः महिला शिक्षा** • प्रस्तुतिः राष्ट्रीय साक्षरता मिशन, पटना*

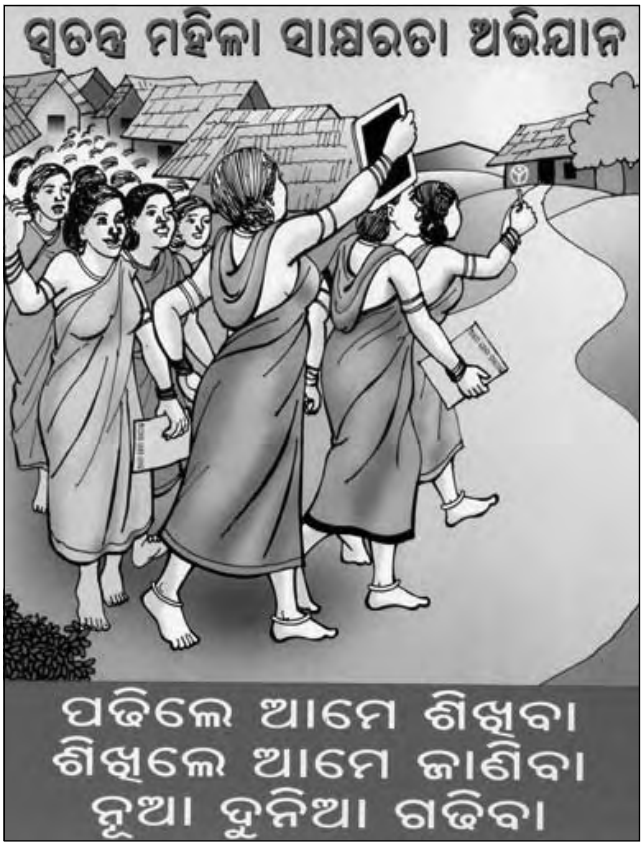

***विषयः महिला शिक्षा** • प्रस्तुतिः राष्ट्रीय साक्षरता मिशन, उड़ीसा*

***विषयः महिला सशक्तिकरण** • प्रस्तुतिः द हंगर प्रोजेक्ट, नई दिल्ली*

बाप की टोपी

बाप की टोपी
कपड़े की नहीं होती है
बेटी के जिस्म की
बनी होती है
जहां-जहां बेटी जाती है
बाप की टोपी
साथ जाती है।
टोपी का संबंध
मात्र बेटी से है
बेटे को उससे
कोई सहानुभूति नहीं।
अन्दर से
बाहर से
पुत्र चाहे कितना ही
काला होकर आता है
टोपी की सफेदी
पर कोई
अन्तर नहीं आता।
वह तो बेटी है,
कि तिनका हिला नहीं
टोपी पहले
मैली हो जाती है।
तभी हर बाप
अपनी बेटी से कहता है
बेटी-टोपी की
लाज रखना
भाई की होड़
मत करना।
वह तो वंश बेल है
अमर बेल की तरह
इसी में इसकी शोभा है।
बेटियां बेजुबान रहें
इसी में वे चरित्रवान हैं।
टोपी कभी नहीं फटती है
बेटियां मिटती हैं
और यह सिलसिला
अन्तहीन होता है।
वंश सुख की
नींद सोता है।
प्रहरियां टोपी की
लाज रखती हैं
फिर भी वे
परायी कही
जाती हैं।
रखती हैं बेटियां
टोपी की लाज
पहनते हैं बेटे
टोपी का ताज।

–रेखा यादव

उदासी

एक ही बात दोहराती हूं बार-बार
मैं उदास बहुत हूं।

बार-बार दोहराने से बेहतर है
बदल देना चाहिए उदासी को उजाले में।

चाय की पत्ती की तरह
बदल देना चाहिए उदासी को स्वाद में।
घुल जाने देना चाहिए शक्कर के दानों की तरह।
पोंछे की तरह रगड़ देना चाहिए उदासी को
चमकने देना चाहिए मन को उजले फर्श की तरह।
बदल देना चाहिए उदासी को साबुन में।

उदासी-उदासी-उदासी
बस्स बहुत हो गई उदासी
पुराने पड़ गए कपड़ों की तरह
उदासी को बेच कर
नए चमचमाते बर्तन खरीद लेना चाहिए।
अनार के दानों की तरह
चमकने देना चाहिए उदासी को।

–नीलेश रघुवंशी

विषयः पटना महिला आंदोलन सम्मेलन का प्रतीक • *प्रस्तुतिः महियर, गुजरात*

विषयः महिला सशक्तता • *प्रस्तुतिः सनरिष्टी, उड़ीसा*

विषयः महिला सशक्तता • प्रस्तुतिः ओढ़व, गुजरात

बिटिया और लोरी

'सा रे गा मा पा'
सुनने से पहले
सुना करती थी बिटिया लोरी
उसमें संगीत-ज्ञान का कोई लक्षण नहीं था
पर अस्थिर चंचल बिटिया
सुनते-सुनते मां की लोरी
सो जाती थी।
मां की लोरी में सब होते
जंगल के हाथी
राजकुमार और राजकुमारी
फूल, नदियां, सागर, पहाड़
यहां तक कि पापा के दफ़्तर की बातें भी
काजू-किशमिश बेचने आया काबुलीवाला भी
छोटे भैया को कभी हुए मलेरिया का दुख
घर में आग लगने से जलीं ननिहाल की
धान की बखारियां।
लोरी में नहीं था मेल
किसी से किसी का
फिर भी आ जाती थी नींद
खुद-ब-खुद।
अब है वह मध्य वयस्का स्त्री
अब उसे नींद नहीं आती।
सो नहीं पाती वह रात भर
अब उसे कोई लोरी नहीं सुनाता
वह किताबें खोलती है
रख देती है
पत्रिका खोलती है
रख देती है
टी.वी. ऑन करती है
टेप चालू करती है
सब बंद कर देती है
खोलती है खुद को
पर बंद नहीं कर पाती।
दीवार घड़ी की ओर देखती है
पार कर गया होता है
समय को समय
काफ़ी देर पहले।

–प्रवासिनी महाकुंड

(मूल उड़िया से अनूदित)

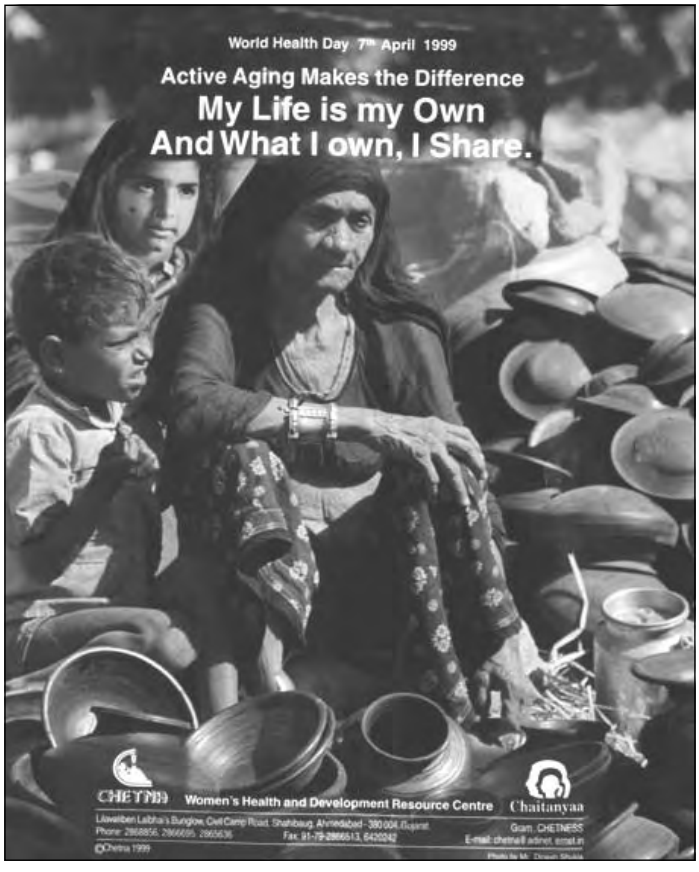

विषयः बुजुर्गों का स्वाभिमान से जीने का अधिकार • प्रस्तुतिः चेतना, अहमदाबाद

संशय में पड़ी मां

कभी मां का था यह घर
समूचे का समूचा
वह इसके ज़र्रे-ज़र्रे में मुस्कुराती थी।
खिड़कियों-दरवाज़ों पर मनपसंद रंगों के परदे टांगकर
दीवारों पर रेशम की कढ़ाई का 'स्वागतम्' सजाती थी।
घर में बसते थे उसके प्राण
दो दिन भी नानी के यहां कब टिक पाती थी?
घर बुलाता था उसको
और वह बौराई-सी, पगलाई-सी,
तीसरे दिन ही दौड़ी चली आती थी।
महकती थी समूचे घर में गुलाबों की गंध बनकर
मंडराती थी यहां-वहां
तितली के पंख उधार लेकर
मां के बिना घर की कल्पना
हम लोग भी कहां कर पाते थे?
सच, समूचे का समूचा
उसी का तो था यह घर।
पता नहीं कब-कैसे घर बहुओं का हुआ।
मां से छिनते गए
कमरे, आंगन, रसोई, बरामदा, छत।
सिर्फ़ एक छोटी-सी जगह उसके हिस्से में आई,
कबाड़ भरने की कोठरी।
मां महकने लगी उसी कोठरी के एक आले में
चंदन की अगरबत्ती बनकर।
ज्यों-ज्यों जलती गई,
छोटी, और छोटी, और भी छोटी होती गई।
और जब सिर्फ़ एक सींक-सी बाकी बची
तो उसे बुहार दिया गया घर के बाहर।
अब वृद्धाश्रम में बैठी मां
संभ्रमित मन से सोचती है
क्या कभी उसका भी कोई घर था समूचे का समूचा?
और वह एकबारगी संशय में पड़ जाती है।

–ऊषा यादव

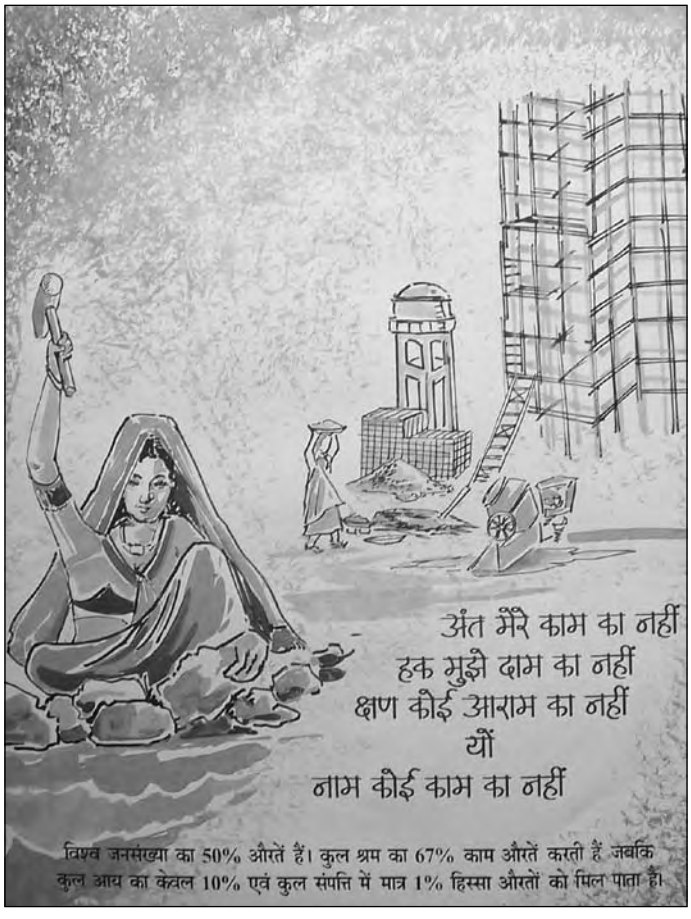

***विषयः औरत व श्रम** • प्रस्तुतिः जागोरी, नई दिल्ली*

तोड़ती पत्थर

वह तोड़ती पत्थर
देखा मैंने इलाहाबाद के पथ पर—
वह तोड़ती पत्थर।

कोई न छायादार पेड़
वह जिसके तले बैठी हुई स्वीकार
श्याम तन, भर बंधा यौवन,
गुरु हथौड़ा हाथ
करती बार-बार प्रहार
सामने तरु-मालिका, अट्टालिका, प्राकार।

चढ़ रही थी धूप
गर्मियों के दिन
दिवा का तमतमाता रूप
उठी झुलसाती हुई लू
रुई ज्यों जलती हुई भू
गर्द चिनगी छा गई
प्रायः हुई दोपहर,
वह तोड़ती पत्थर।

देखते देखा, मुझे तो एक बार
उस भवन की ओर देखा छिन्न-तार
देखकर कोई नहीं
देखा मुझे उस दृष्टि से
जो मार खा रोयी नहीं
सजा सहज सितार,
सुनी मैंने वह नहीं जो थी सुनी झंकार।
एक छन के बाद वह कांपी सुघर,
ढुलक माथे से गिरे सीकर,
लीन होते कर्म में फिर ज्यों कहा—
"मैं तोड़ती पत्थर"

–सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'

बेजगह

"अपनी जगह से गिर कर
कहीं के नहीं रहते
केश, औरतें और नाखून"–
अन्वय करते थे किसी श्लोक का ऐसे
हमारे संस्कृत टीचर।
और मारे डर के जम जाती थीं
हम लड़कियां
अपनी जगह पर!

जगह? जगह क्या होती है?
यह, वैसे, जान लिया था हमने
अपनी पहली कक्षा में ही!
याद था हमें एक-एक अक्षर
आरंभिक पाठों का–
"राम, पाठशाला जा!
राधा, खाना पका!
राम, आ बताशा खा!
राधा, झाड़ू लगा!
भैया अब सोएगा,
जाकर बिस्तर बिछा!
अहा, नया घर है!
राम, देख यह तेरा कमरा है!
'और मेरा?,
'ओ पगली,
लड़कियां हवा, धूप, मिट्टी होती हैं
उनका कोई घर नहीं होता!"

जिनका कोई घर नहीं होता–
उनकी होती है भला कौन-सी जगह?
कौन-सी जगह होती है ऐसी
जो छूट जाने पर
औरत की हो जाती है!

कटे हुए नाखूनों,
कंघी में फंस कर बाहर आए केशों-सी
एकदम से बुहार दी जाने वाली?

घर छूटे, दर छूटे, छूट गये लोग-बाग,
कुछ प्रश्न पीछे पड़े थे, वे भी छूटे!
छूटती गई जगहें।

परंपरा से छूट कर बस यह लगता है–
किसी बड़े क्लासिक से
पासकोर्स बीए के प्रश्नपत्र पर छिटकी
छोटी-सी पंक्ति हूं–
चाहती नहीं लेकिन
कोई करने बैठे
मेरी व्याख्या सप्रसंग!

सारे संदर्भों के पार
मुश्किल से उड़ कर पहुंची हूं,
ऐसे ही समझी-पढ़ी जाऊं
जैसे तुकाराम का कोई
अधूरा अभंग!

–अनामिका

इसी समय

एक कोने में
बिल्ली अपने बच्चों को दूध पिला रही है।
छोटे-छोट बच्चे और बिल्ली सटे हुए हैं
आपस में मुश्किल है उन्हें गिनना।

एक औरत
पेड़ में रस्सी का झूला डाल
झुला रही है बच्चे को।
साथ-साथ बच्चे के औरत भी जा रही है
धीरे-धीरे नींद में।

इस समय
एक पत्ता भी नहीं खड़कना चाहिए।

–नीलेश रघुवंशी

विसंगतियां

जब भी मुझे
ज़ंजीरों का अहसास
कुछ ज़्यादा हुआ है
कुछ कर गुज़रने की ललक
मुझमें बढ़ी है।
सीमाएं तोड़ जाने की शक्ति
मेरे बंधे हाथों ने दी है।

पैरों की बेड़ियों ने
गगनचुम्बी हौसले दिए हैं।

सच कहूं, ठोकरों ने मेरी ज़िन्दगी
गतिशील ही की है
जब भी तुमने मेरे
अस्तित्व को नकारना चाहा
मुझे अपनी अलग पहचान मिली है।

–कान्ता गोगिया

विषयः औरत व आराम • प्रस्तुतिः अस्मिता, हैदराबाद

दिहाड़ी

हम जाती है काम पर
मालिक के रेशमी बिस्तर
हँसते हैं हम पर
दिन-दहाड़े हमको वो
खींच लेता है बिस्तर पर
घर लौटने पर
खटिया पर लेटे
सैयां निखट्टू
ज़ोर से दहाड़ते हैं हम पर!

–अनामिका

अग्निप्रवेश

अग्नि प्रवेश
मेरे सत्य के
साक्ष्य के लिए नहीं
तेरे स्पर्श के
दाग मिटाने के लिए है।

–करुणानिधि
मूल तमिल से सोलजी के
थॉमस द्वारा अनूदित

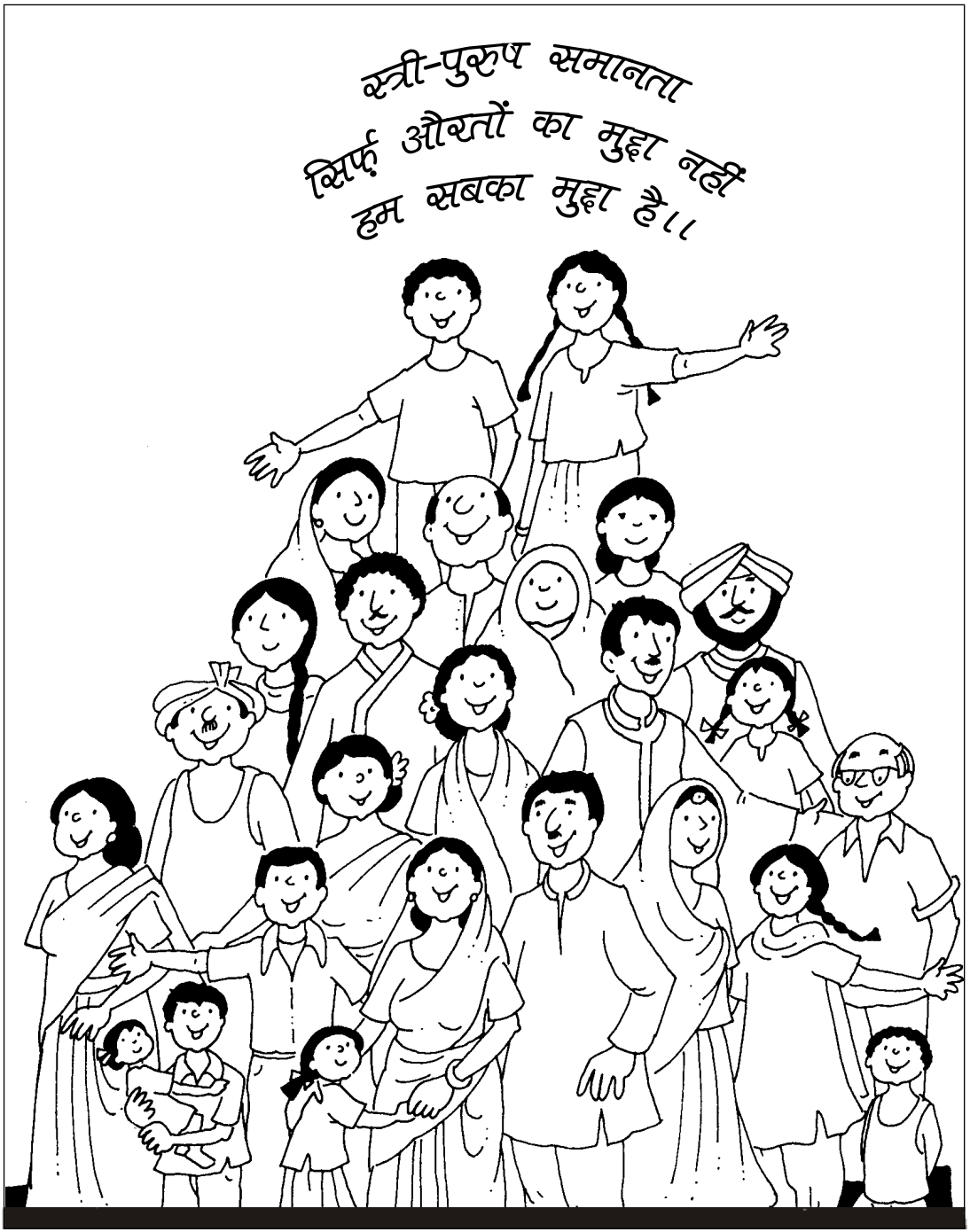

विषयः लैंगिक समानता • साभारः विमेन इन इण्डियाः हाऊ फ्री? हाऊ इक्वल? कल्याणी मेनन-मेनन/पी.के. शिवकुमार

मध्यवर्गीय गार्गी

एक पत्थर मेहनत का
एक पत्थर काल का
एक पत्थर त्याग का
घर संभालने वाली...
घर का पालन-पोषण करने वाली का नाम
गृहस्वामिनी/गृहलक्ष्मी/मलिकाइन!
ऐसे गुहाघर में घिरी
जकड़ी,
लट्टू की तरह घर-भर में घूमती
कार्यरत पर अतृप्त।

हर घर से ही
पकने वाले व्यंजनों की आती गंध
दूर तक है फैल जाती
कोई गढ़ता है उस स्वादिष्ट गंध के वाक्य
कोई नवाज़ता नए शीर्षक से
'आधुनिक स्वतंत्र स्त्री'
'स्त्री का विकास'
'प्रगति के पायदान पार करती स्त्री'
आदि-आदि...
सुनने में अच्छे लगते वाक्य
आंकड़ों की प्रगति सूरज तक पहुंचती।

सांझ में
गोधूली की बेला में
थकी-हारी
दाएं-बाएं हाथ में
पर्स, थैलियां संभालते हुए
घर लौटने वाली वह गार्गी,
वह मध्यवर्गीय शीर्षकों की मलिकाइन
पर्स के ओहदे के साथ
संभाल कर लाई वाक्यों की लकड़ियां
चूल्हे में लगाती
कि जल्दी तैयार कर सके चाय
चाय की फुर्ती में ही
समेटने हैं उसे डैने।

फिर कुकर
फिर रोटियां
फिर तड़का
छोटे-बड़ों की मिन्नत
नौकरों की फिक्र
ओफ! कसकर जकड़ने वाले कितने धागे!

पूरी थकान पकाने वाली वही
और पकने वाली भी वही!

– इंदिरा संत

मूल मराठी से डॉ. गिरीश काशिद द्वारा अनूदित

पुत्रमोह

बैठक में रखी मेज के शीशे के नीचे
दो तस्वीरें सजी हैं
ये तस्वीरें मेरे भाइयों की हैं
एक हैदराबाद रहता है, एक दिल्ली।
पिताजी मेज पर घंटों व्यस्त दीखते हैं।
पेट्रोल पंप बिक चुका है बाकी कारोबार
पहले से ही ठप है।
इतने बड़े घर में पिताजी अकेले रहते हैं
बेटियों की शादी हो गई, पत्नी का स्वर्गवास हुआ
घर पुरातत्व का नमूना लगता है
एक समय खूब गुलज़ार था।
खाने के बेहद शौकिन पिताजी कई कई दिन
दूध-ब्रेड पर गुज़ारा करते हैं
मुझे याद है उनका भोजन करना
घर का सबसे अहम कार्य हुआ करता था।
बेटों में से कभी कभी कोई आता है
अपने हिस्से के रुपये लेने
कोई नहीं कहता आप चलकर हमारे साथ रहें
हमें खुशी होगी।
बड़ी बहन बीच-बीच में आती है
जितना होता है सब व्यवस्थित कर जाती है
नौकर को तनखा से अलग
और रुपयों का लालच देती है
ताकि टिका रहे।
मेरे मन में कोई बार आया
मेज़ के नीचे की तस्वीरें बदल दूं
भाइयों की फोटो हटा
बड़ी बहन की तस्वीर लगा दूं।
पर जानती हूं पिताजी सह नहीं पायेंगे मेरी
यह हरकत
सख्त नाराज़ होंगे
बहन को भी मलाल होगा
व्यर्थ पिताजी को दुख पहुंचा।
पुत्र मोह का यह नाला भारत में ही बहता है
या विदेशों में भी है इसका अस्तित्व
चिंतनीय है यह प्रश्न?

– निर्मला गर्ग

(साभार-कबाड़ी का तराजू, राधाकृष्ण प्रकाशन)

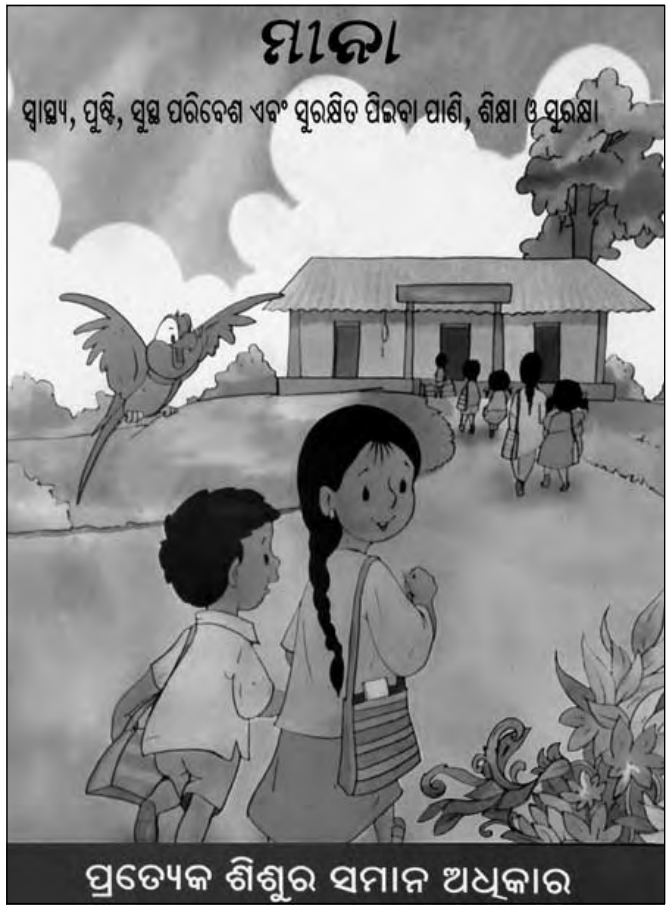

विषयः लड़की व लड़के के लिए शिक्षा • *प्रस्तुतिः यूनिसेफ़, उड़ीसा*

भट्टी

थापती हूं जब मैं कंडे,
विभिन्न आकार के
सोचती हूं
इन कंडों की तरह
यदि मिली होती
यह दुनिया बनाने को
सबसे पहले बनाती
मैं स्वयं को
नये ढांचे में।
समाज बनाती
नये सांचे में।
फिर मेरी बच्चियों की
मेरी पीड़ा की
यों हलाली तो न होती
पर क्या करूं?
प्रकृति ने
मुझे सांचा बना दिया
दूसरे के हाथों का।
वह जब चाहता है
इस्तेमाल कर लेता है
जब बुत बनाने
की शक्ति
मुझ में होती है
फिर बना देता है
मुझे भट्टी
उन बुतों को
पकाने के लिए।
बचा लेता है
अपने हाथ जलने से
और दहकते-दहकते
मैं
राख हो जाती हूं।

विषयः धार्मिक कट्टरवाद • प्रस्तुतिः अज्ञात

काजल

मैं जन्मी तब
छठी के दिन
नानी ने तांबे की तसली
दीये पर रखकर
बड़ी उमंग से
काजल बना कर
मेरी आंखों में
लगाया था।
पिछले साल ही
बेटी के घर
बेटी जन्मी
तब मैंने भी
छठी के दिन
उमंग के साथ
काजल बनाकर
अपनी दोहित्री की
स्वप्नभरी आंखों में लगाया था।
आज
इस ढलती संध्या में
आगजनी में जलकर
काल स्याह हो गए
मेरे शहर के मकान
हैरान हूं मैं कि
किसकी छठी के लिए
बनाया गया
इतना सारा काजल?

– उषा उपाध्याय
(मूल गुजराती से अनूदित)

एक सवाल

तुम्हें बिना शर्तों का प्यार चाहिए
अगर मैं झिड़क दूं
तो भी क्या प्यार कर सकोगे मुझे?

तुम्हें धिक्कार दूं
तो नन्हीं बच्ची समझकर
क्या पुचकार सकोगे मुझे?
तुम्हारे अनुकूल न चलूं,
फिर भी क्या कर सकोगे मिन्नतें?

अपने मन को टटोल कर देखो
सब कुछ तुम्हारे अनुकूल होने पर ही
मुझ पर प्यार
सहस्रदल कमल की तरह खिलेगा?

तुम सिर्फ़ खुद से प्यार करते हो
'तुम' में से तुम बाहर निकलो
मेरे अंतर्मन में झांको
पाने में ही नहीं
देने में भी कितना आनंद है

चलो, यह तो बताओ
बिना शर्त के प्यार
क्या दे सकोगे तुम?

– हिमजा

(मूल तेलुगु से आर शांता सुंदरी द्वारा अनूदित)

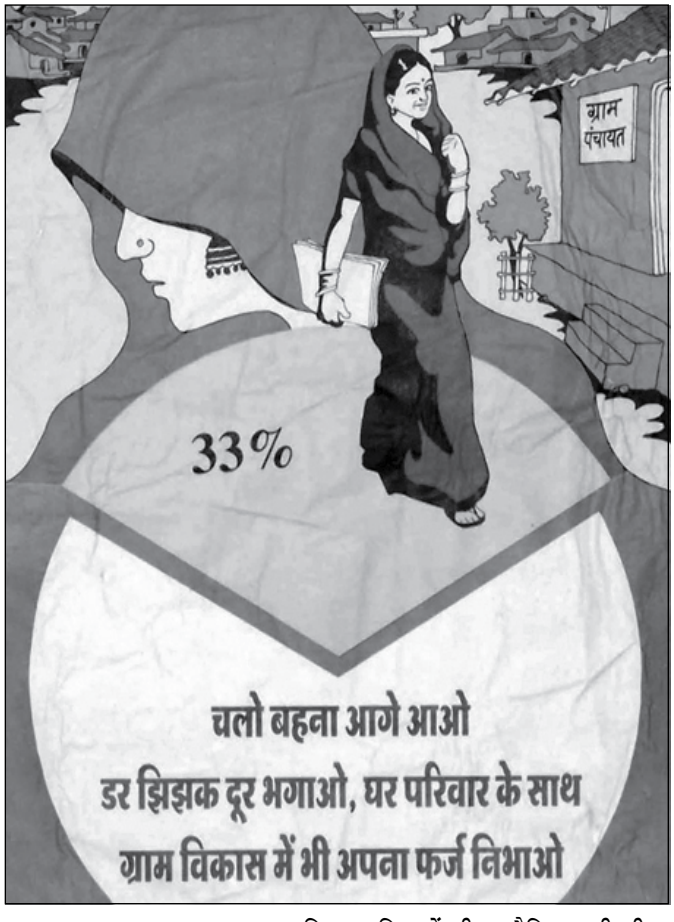

विषयः महिलाओं की राजनैतिक भागीदारी पर राजस्थान में बनाए पोस्टर • *प्रस्तुतिः अज्ञात*

मंकेन पूवु*

मैं कटीली झाड़ियों में फंस कर
तड़पने वाली गौरैया हूं
किसी भी तरफ हिलूं
कांटे चुभेंगे मुझे ही।
ये आज के कांटे नहीं हैं
पीढ़ियों से मेरे इर्द-गिर्द फैलाई
गुलामी की ज़ंजीरें हैं
आगे कुआं, पीछे खाई
हमेशा मेरे इर्द-गिर्द-
खतरे फुफकारते हैं।
अरे हां, अपनी ज़िंदगी को मैंने जीया ही कब?
घर में पुरुषाहंकार एक गाल पर थप्पड़ मारता है
तो गाली में वर्ण आधिपत्य
दूसरे गाल पर तमाचा जड़ता है।
मजूरी के पैसे लेने जब खेत गई तो
मेरे पसीने के साथ मुझे ही लूटने की ताक में
बैठा था ज़मींदार
मन किया कि मैं बीज बन कर धरती में
समा जाऊं।
युगों-युगों से दूर रही पढ़ाई से
हॉस्टल की गोद में जा पहुंची
नहीं पाई लेकर झेल वहां भी
वार्डन की भूखी नज़रें
मन किया
देह मुट्ठी से दूर फेंक दूं।
बचपन में स्कूल में बिन्दी के
चलते
बड़े होने पर जाति के कारण
जब सब फुसफुसाते
मन किया कि ज़ोर से नाक दबा लूं।
बासना के काम तो आती रही मैं
मगर घर की घरनी योग्य कभी जब नहीं बन पाई
मन किया किसी तालाब में डूब मरूं।
इन अपमानों से लड़ते-भिड़ते
मैंने सीखे चार अक्षर
और जा पहुंची रोज़गार के दफ्तर
नौकरी करने
रिजर्वेशन कैटेगरी की फुसफुसाहट न सुन सकी
मन किया अपने कानों में सीसा डाल लूं।
सहनशक्ति चुक जाने पर
शूल बन कर चुभता है घास का तिनका भी।
इन कष्टों की आग में तपकर
पलाश-सी खिल जाऊंगी
अड़चनों का जंगल पार कर
झरने-सी छलांग लगाऊंगी!

–चल्लापल्लि स्वरूपारानी

मूल तेलुगु से डॉ. पी. मणिक्याम्बा द्वारा अनूदित

विषय: महिला सशक्तिकरण • प्रस्तुति: महिला पेच वर्क कोऑपरेटिव सोसाइटी, अहमदाबाद

*पलाश का फूल

प्यार में डूबी हुई माँ

मैं दुनिया की सबसे खुशनसीब लड़की हूँ
वो इसलिए कि मेरी माँ इन दिनों
अपने पुरुष मित्र के प्यार में डूबी हुई है
और मैं उन्हें आपस में एक-दूसरे को
चुपके-चुपके प्रेम करते हुए देखती हूँ।

पिता, तुम्हारे जाने के बाद, कितने बरस,
कितनी अकेली, कितनी उदास रही माँ
तुम इस तरह कैसे छोड़कर चले गए उसे
क्या तुम्हें माँ से अधिक प्यार नहीं था?

क्या इस दुनिया में मेरी माँ से
खूबसूरत भी कुछ और है
मैं दावे के साथ कह सकती हूँ
मेरी माँ दुनिया की सबसे खूबसूरत औरत है
और तुम्हें तो समय ने यह खजाना
यूँ ही सौंप दिया था फिर तुम्हें क्या हुआ
जो तुम इस दूध, शहद, चन्दन, फूलों और पवित्रता के
मिश्रण से बनी जन्नत को चले गए छोड़कर?

माँ की देह के वेग उसकी कामुक चंचलता
और संसर्ग-संयम के बारे में
तुमसे बेहतर कौन जानता होगा
क्या तुम्हें जीते जी कभी नहीं लगा कि तुम्हारे बाद
कितना कठिन होगा इस नदी को बाँध पाना
कि तुम कितने सम्पन्न थे
और कितनी विपन्न बना गए उसे एक दिन?

माँ तो भूल चुकी थी सारे रंग
उसे चटख दिखाओ तो वह उसे फीका बतलाती
मीठा खिलाते तो उसे कड़वा कहकर उलट देती
गीत सुनते ही रख लेती कानों पर हाथ
कहीं आती-जाती तो
छीलती हुई अपनी आँखों से सड़क।

फिर एक दिन माँ की अँधेरी दुनिया में
रोशनी की एक छोटी सी तीली जली
जो देखते-देखते माँ के समय के साथ-साथ
उस कमरे में भी सूरज की तरह फैल गई
जिसकी एक दीवार पर फूलों से सजी
तुम्हारी बाईस साल पुरानी तस्वीर टँगी है।

अब तुम्हें वाकई नहीं मालूम कि माँ
इस उम्र में कितनी खूबसूरत देती है दिखाई
और प्रेम करती हुई माँ को देखती
मैं क्यों न फिरूँ बौराई
प्रेम करती हुई माँ इन दिनों
बिल्कुल मुझ जैसी लगने लगी है
जैसे मेरी स्कूल की कोई सहेली
शरारती चंचल और हँसमुख।

इन दिनों उसे देखकर लगता ही नहीं
कि यह औरत तुम्हारी विधवा है
इन दिनों मैं उसे प्रेम करते ही नहीं
अपने प्रेम को छिपाते और बचाते भी देख रही हूँ
और देखो तो सही वह मेरे सामने
ऐसा अभिनय करती है जैसे मुझे उसके
प्रेम के बारे में कुछ पता ही नहीं है!

– पवन करण

तुम्हारा साथ

तुम्हारा साथ मिलने से अहसासे कुव्वत आया है
नई दुनिया बनाने का जुनूं फिर हम पे छाया है

कुछ तन्हा तन्हा मैं थी, कुछ तन्हाई तुम्हें थी
दोनों में थी लाचारी, दोनों थीं थक के हारी
इज़हारे राज़ करने ने घुटन को कुछ घटाया है

थोड़ा मैं तुम को समझी, थोड़ा तुम मुझको समझी
कुछ ऐसा लग रहा है, कि प्यार हो गया है
नये रिश्तों, नये नातों ने कैसा रंग जमाया है

हम ख्याल हैं जब हम तुम, हमसफ़र भी बन जायें
चाहे जैसे हों मौसम, इक दूजे को पनपायें
इन्हीं सपनों के रंगों ने हमें फिर गुदगुदाया है
तुम्हारा साथ मिलने से अहसासे कुव्वत आया है।

–कमला भसीन

विषय: महिला सशक्तता • प्रस्तुति: चेतना, अहमदाबाद

विषय: बीजिंग सम्मेलन 1995 के बाद • प्रस्तुति: चेतना, अहमदाबाद

मेरे भीतर कई औरतें

एक औरत है मेरे भीतर
नए वर्ष की तरह पूरे साल उत्साह से सराबोर
उसमें है सब कुछ नया
मैं हूं वह औरत
उस औरत में हूं मैं।

एक औरत है मेरे भीतर
आँसुओं से
आँसू का सत निकालकर
लिए एक सूक्ष्म संवेदनशीलता
खो जाती वह रजनीगंधा में
जहाँ कुछ पल जीवन जिया जाता है
अपनी इच्छा से।

एक औरत है मेरे भीतर
अनेक प्राप्तियों और कुछ अप्राप्तियों की
कुंकुम माथे को स्निग्ध करती कभी
कभी स्वेदसिक्त।

एक औरत है मेरे भीतर
जिसके भीतर मंडराता रहता है
एक नीलाभ पक्षी
अस्थिर हैं जिसके डैने।

एक औरत है मेरे भीतर
कभी इतिहास की तरह लंबी है
उसकी कहानी
तो कभी मात्र पलक-झपकने भर।

खालीपन भरा एक जीवन
जिसमें पांच औरतों का एकत्र
अपूर्व समारोह
जबकि नए साल-सी कोलाहल भर एक देह
बेहद अन्यमनस्क।

कई औरतें मेरे भीतर
उन्हें किसी हद तक
पहचानती हूं
नहीं जानती पर इनमें से
प्रत्येक दूसरे से भिन्न है
यह भी नहीं
स्वीकारती!

– प्रवासिनी महाकुंड

मूल उड़िया से डॉ. राजेन्द्र प्रसाद मिश्र द्वारा अनूदित

विषयः 'स्त्री' • *प्रस्तुतिः चंद्रलेखा*

विषयः महिला, धर्म व कानून • *प्रस्तुतिः अज्ञात*

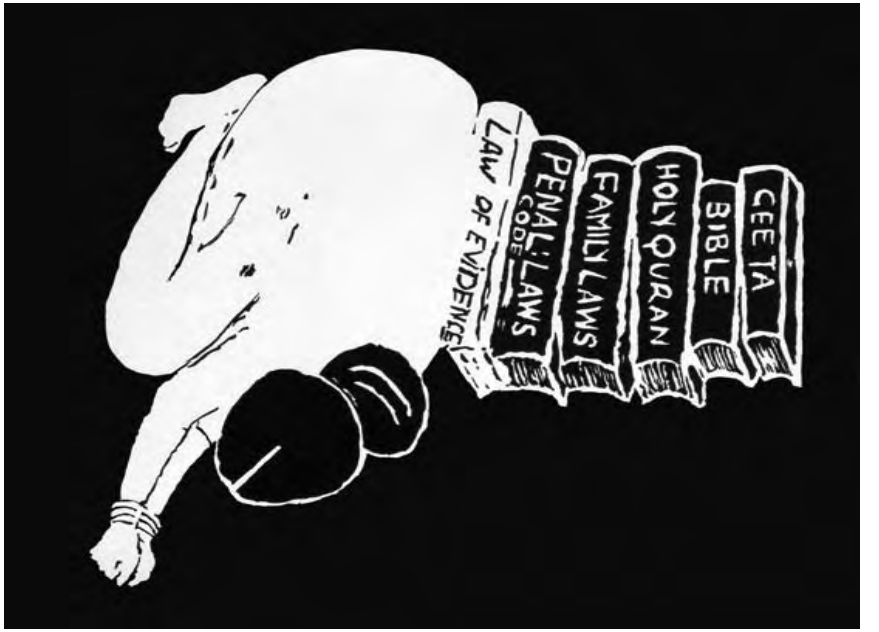

विषयः औरत व धर्म • *प्रस्तुतिः शीबा छाछी*

विषयः नई आर्थिक नीति व महिला स्वास्थ्य • *प्रस्तुतिः इंसाफ़, मुंबई*

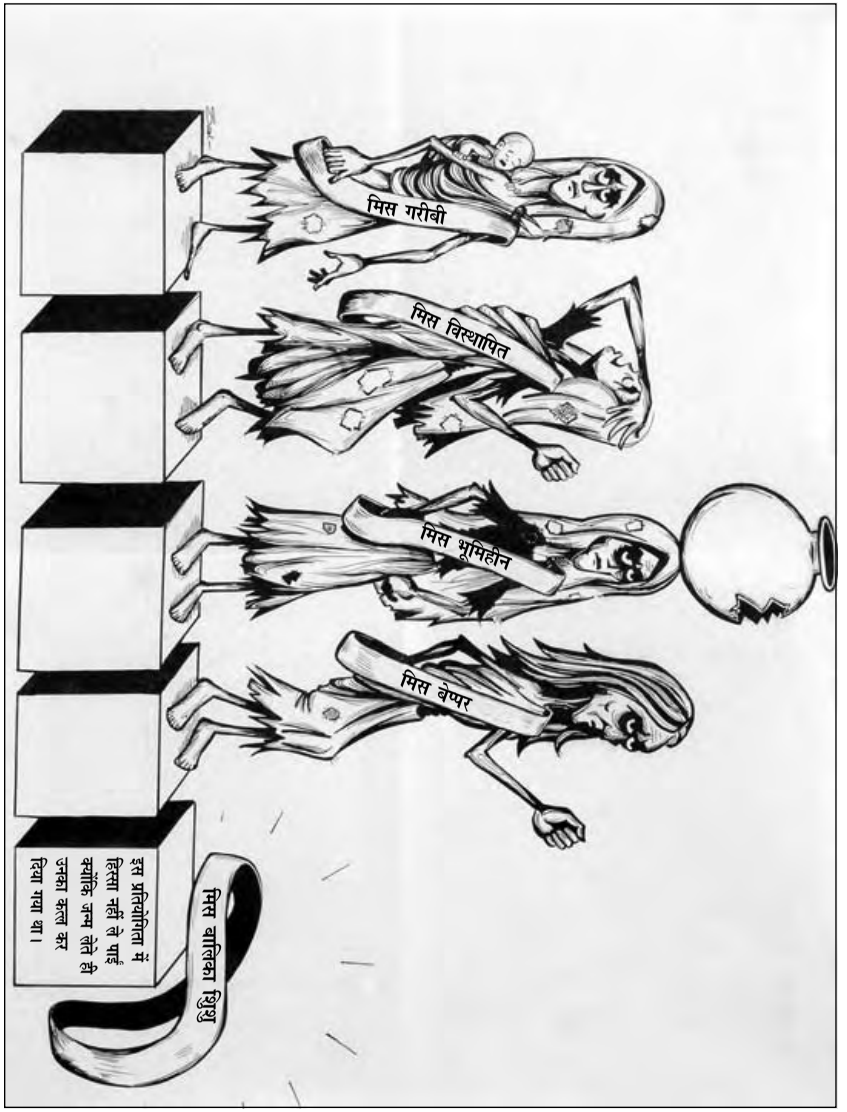

यह न सोचो कल क्या हो

यह न सोचो कल क्या हो
कौन कहे इस पल क्या हो

रोओ मत, न रोने दो
ऐसी भी जल-थल क्या हो

बहती नदी की बांधे बांध
चुल्लू में हलचल क्या हो

हर छ्न हो जब आस बना
हर छ्न फिर निर्बल क्या हो

रात ही गर चुपचाप मिले
सुबह फिर चंचल क्या हो

आज ही आज की कहें-सुने
क्यों सोचें कल, कल क्या हो,

– महज़बीन बानो

विषयः 'स्त्री देवी' व सशक्तता • प्रस्तुतिः चंद्रलेखा

विषयः 'स्त्री' चेतना • प्रस्तुतिः चंद्रलेखा

अन्तर

दिल से और दिमाग से
जगाई गई स्त्री
काम से जगी स्त्री से खतरनाक है।
इसलिए
कण्णकी ने एक पूरे पुर को जलाया था...
मीरा और अक्कादेवी के सामने
भीड़ खामोश हो गई थी...

इसलिए ही
वेश्या कभी भी
हत्यारिन नहीं बनती...
पुरों के बदले वे
अपने ही देह-गोपुरों को जलाती हैं...
भीड़ की
मात्र हवस होकर खत्म होती है...।

–बिलु. सी. नारायण

मूल तेलुगु से सोलजी के थॉमस द्वारा अनूदित

विषयः दहेज विरोध • प्रस्तुतिः चंद्रलेखा

विषयः एक आम स्त्री के अनेक काम • प्रस्तुतिः संचेतना, कोलकाता

विषयः एक आम स्त्री के अनेक काम • प्रस्तुतिः महिला जागरण केन्द्र, बिहार

विषयः पर्यावरण सुरक्षा • प्रस्तुतिः विस्तार, बंगलुरु

विषयः महिला व श्रम • प्रस्तुतिः गोरखपुर एन्वायरमेंटल एक्शन ग्रुप

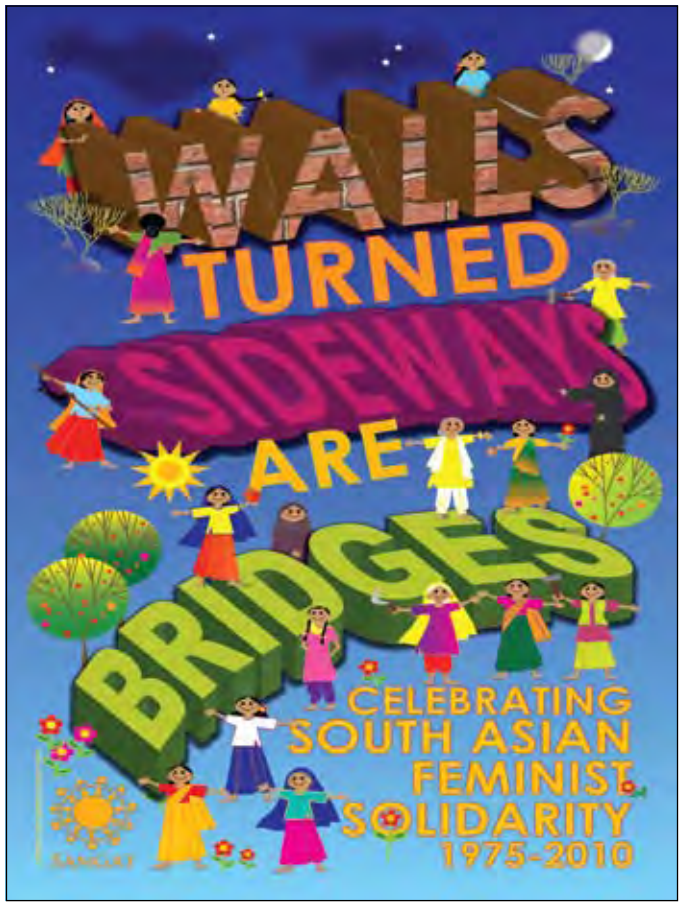

दोनों पोस्टरः ***विषयः दक्षिण एशिया में नारीवादी एकजुटता*** • *चित्रः बिंदिया थापर* • *प्रस्तुतिः संगत, नई दिल्ली*

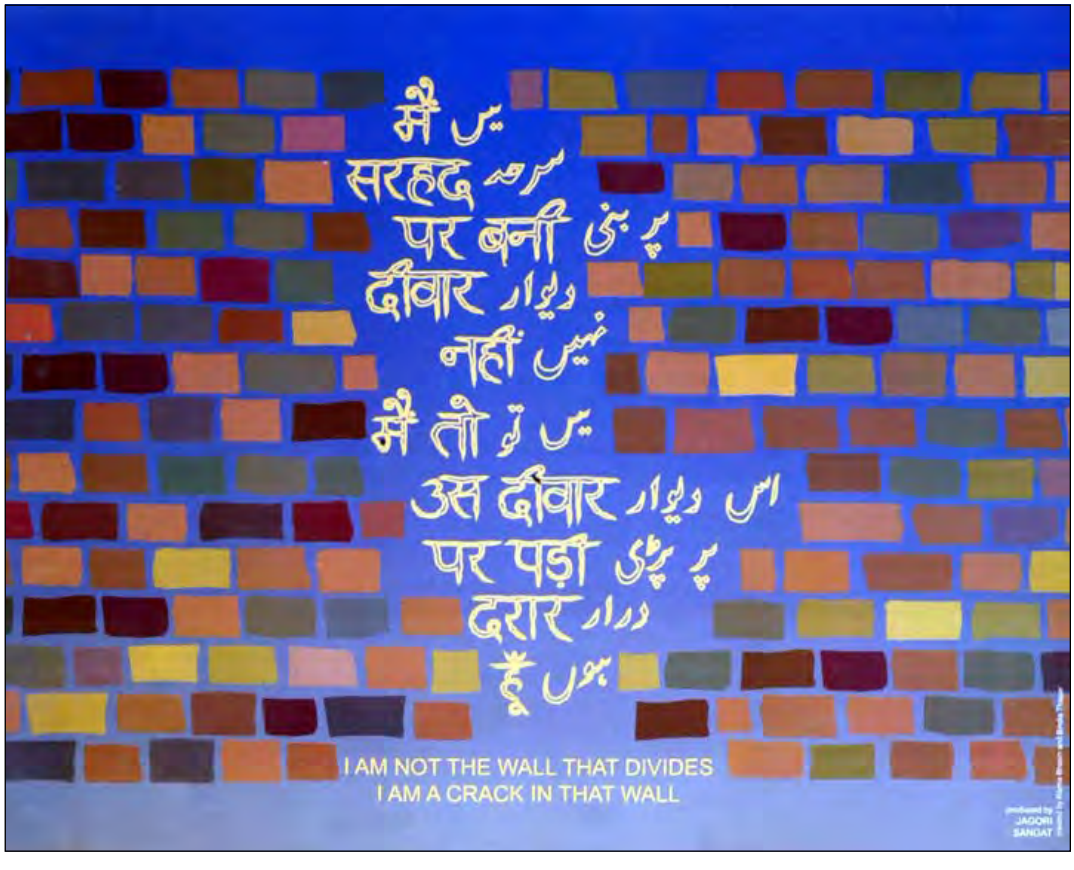

विषयः महिलाओं की राजनैतिक भागीदारी • *प्रस्तुतिः 'सर्च' राज्य संसाधन केंद्र, हरियाणा*

विषयः राजनैतिक भागीदारी • *प्रस्तुतिः अस्मिता, हैदराबाद*

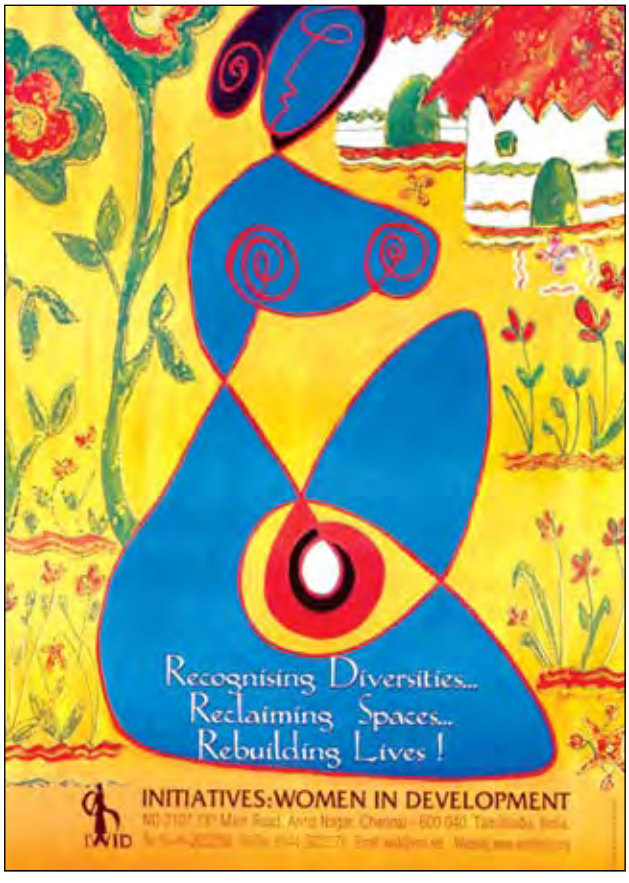

विषयः विविधता व जीवन • *प्रस्तुतिः आईविड, तमिलनाडु*

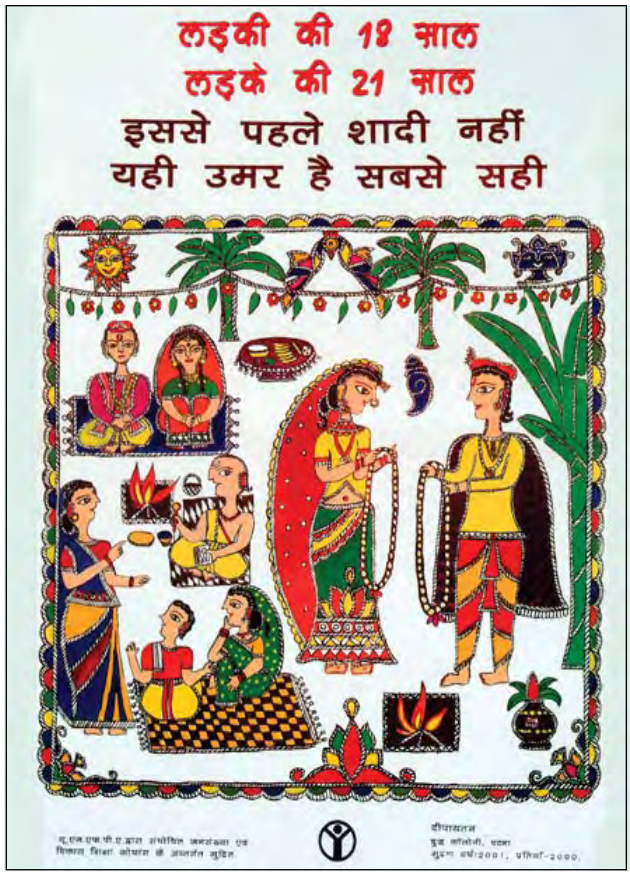

विषयः बाल विवाह विरोध • *प्रस्तुतिः संयुक्त राष्ट्र जनसंख्या कोष एवं जनसंख्या व विकास विभाग, बिहार*

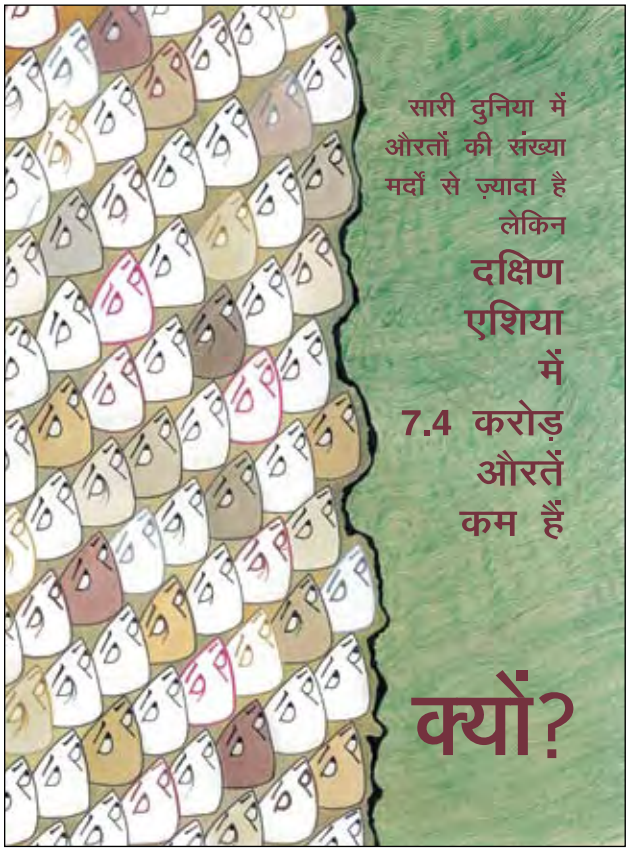

विषयः महिलाओं की घटती संख्या • *चित्रः बिंदिया थापर* • *प्रस्तुतिः जागोरी, नई दिल्ली*

विषयः 'स्त्री-देवी' व सशक्तता • *प्रस्तुतिः चंद्रलेखा*

एक आदर्श औरत की छवि

टीवी धारावाहिक
बनाने वालों के लिए
एक आदर्श दर्शक

फैशन उद्योग
के लिए
एक आदर्श सुंदरी

समाज के लिए
एक आदर्श
गृहिणी

ससुराल वालों
के लिए
एक आदर्श बहू

मालिक व
पुरुष
सहकार्यकर्त्ताओं
के लिए
एक आदर्श
सहकार्यकर्त्ता

आप इनमें से कौन हैं ?

विषयः आदर्श महिला • चित्रः नंदिनी, गुजरात

अड़ियल मन विद्रोही

मां कहती थी ज़ोर से मत हंस
तू लड़की है...
धीरे से चल,
अच्छे घर की भली लड़कियां
उछल–कूद नहीं करती हैं,
मैं चुप रहती...
मां की बात मान सब सहती,
लेकिन अड़ियल मन विद्रोही
हंसता जाता, चलता जाता,
कंचे खेलता, पतंग उड़ाता
डोर संग खुद भी उड़ जाता,
तुम लड़के हो,
तुम क्या जानो?
कैसे जीती है वो लड़की,
जिसका अपना तन है बंदी
लेकिन अड़ियल मन विद्रोही...

–आराधना चतुर्वेदी 'मुक्ति'

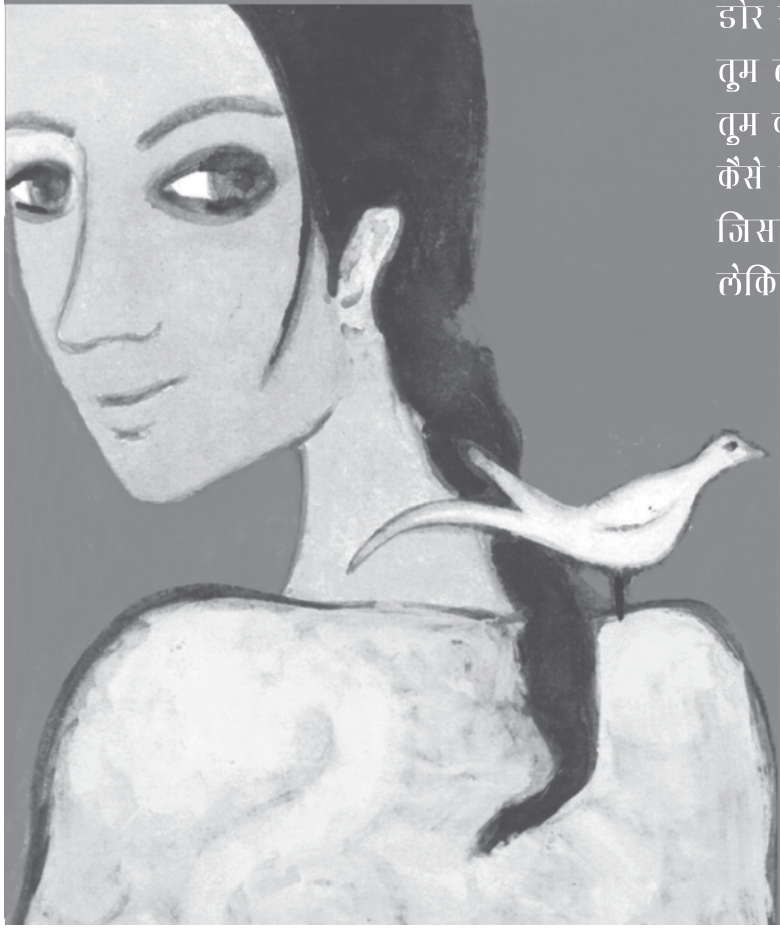

साभार: निरंतर, नई दिल्ली

विषयः महिलाओं के ख़िलाफ़ हिंसा • *चित्रः बिंदिया थापर* • *प्रस्तुतिः जागोरी, नई दिल्ली*

...अन्त में

जागोरी की ओर से हम सबला के सभी पाठकों को नव वर्ष की ढेरों शुभकामनाएं।

भारतीय महिला आंदोलन में पोस्टर एक ऐसा रचनात्मक माध्यम रहा है जिसका इस्तेमाल कलात्मक व सम्प्रेषण दोनों लिहाज़ से व्यापक तौर पर होता है। फिर चाहे वह भोपाल गैस कांड हो या नर्मदा विस्थापन, आठ मार्च का जश्न हो या सुरक्षित गर्भ निरोधकों की मांग, सभी पड़ावों में अनेक पोस्टर्स की रचना की गई है। इस लिहाज़ से यदि कहा जाये कि भारतीय महिला आंदोलन में पोस्टर्स एक राजनैतिक भूमिका निभाते हैं तो गलत नहीं होगा।

सत्तर के शुरूआती दशक में जब महिला आंदोलन का उदय हुआ तो हर अभियान- हर मुद्दे के दौरान रंगबिरंगे और दिलचस्प पोस्टरों की रचना की गई। दहेज, मंहगाई, हिंसा, धर्म, पुलिस व्यवहार, महिला सशक्तिकरण और कानून, विरासत, उत्तराधिकार व स्वास्थ्य को राजनीति जैसे सरोकारों को लेकर अलग-अलग पोस्टर्स रचे गए। महिला व नारीवादी समूहों के लिए इन पोस्टर्स ने महत्वपूर्ण एकजुटता रणनीति की भूमिका अदा की जिसके माध्यम से हर वर्ग, जाति, तबके की औरतों के साथ रिश्ता बनाने में मदद मिली व औरतों के हक़ों की मांग मुखर हुई।

हम सबला के इस अंक में हमने महिला आंदोलन से उभरे कुछ पोस्टर्स आपके लिए प्रस्तुत किए हैं। ये सभी पोस्टर्स जुबान प्रकाशन के *पोस्टर विमेन अभियान* का हिस्सा हैं। इस अभियान के अंतर्गत महिला आंदोलन जनित पोस्टर्स को एकत्रित करके उन्हें सहेज कर रखने की कोशिश की गई है। अभियान में महिला आंदोलन और उसमें उठाए गए मुद्दों को लेकर समय-समय पर गए पोस्टर्स के ज़रिए महिला आंदोलन के इतिहास का भी दस्तावेज़ीकरण करने का प्रयास किया है। इस अभियान के दौरान पंद्रह सौ पोस्टर्स संग्रहित किए गए हैं।

इस संग्रह में महिला हिंसा, स्वास्थ्य, पर्यावरण सुरक्षा, शिक्षा, राजनैतिक भागीदारी, अल्पसंख्यक अधिकार, हाशियेदार पहचान, समान अधिकार, धर्म व साम्प्रदायिकता जैसे महत्वपूर्ण मुद्दों पर पोस्टर्स भी शामिल किए गए हैं।

हमारे लिए इस संग्रह के सभी पोस्टर्स का हम सबला में छापना संभव नहीं था। इसलिए हर मुद्दे से जुड़े कुछ चुनिंदा पोस्टर्स हम यहां छाप रहे हैं जिससे हमारे पाठक समूह को यह अंदाज़ा हो जाये कि महिला आंदोलन के इतिहास में रचनात्मक दृश्य-सामग्री ने कितना अहम योगदान दिया है। यह उन सभी औरतों के लिए एक सशक्त सम्प्रेषण तकनीक है जो अपने मन के उद्‌गारों और अहसासों को कलमबद्ध करने में शायद असमर्थ रही हैं पर रंगों और चित्रों से उन्हें उकेरकर एक नई भाषा की रचना में वे सबसे आगे हैं।

–जुही जैन

पाठकों की प्रतिक्रियाएं

नामः.....

संस्था का पूरा पताः.....

कितने समय से हम सबला के पाठक हैंः.....

पत्रिका के पाठक कौन हैंः.....

1. हम सबला से जुड़े रहने के पीछे आपका मुख्य उद्देश्य क्या रहा है?

   .....

2. हम सबला के विषय तथा लेखों का आपस में तालमेल कैसा रहा है?

   .....

3. हम सबला की उपयुक्तता पर अपने विचार लिखें।

   .....

4. हम सबला आपके काम में किस प्रकार उपयोगी/अनुपयोगी है?

   .....

5. हम सबला के स्वरूप, चित्र, अक्षरों के साइज़ पर अपने सुझाव लिखें।

   .....

6. क्या आप अन्य लोगों/समूहों को हम सबला मंगवाने की सलाह देंगे? हां व न कहने के कारण लिखें।

   .....

7. हम सबला को बेहतर बनाने के लिए दो सुझाव दें।

   .....

8. कोई अन्य सुझाव/प्रतिक्रिया

   .....

हम सबला पर आपके सुझावों/विचारों का हम स्वागत करते हैं।

नया प्रकाशन

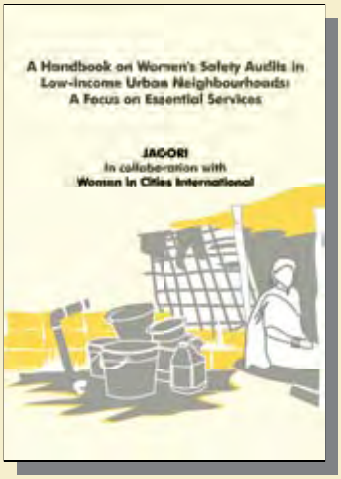

निम्न आय शहरी ज़िलों में महिला सुरक्षा चौकसी पुस्तिका:

विशेषत: ज़रूरी सेवाओं पर केंद्रित इस पुस्तिका में यह दर्शाया गया है कि निम्न आय वाले शहरी इलाकों जैसे पुनर्वास क्षेत्रें, झुग्गी-झोपड़ी व अस्थाई रिहाइशी जगहों पर ज़रूरी सेवाओं की उपलब्धता के मुद्दों को महिला सुरक्षा चौकसी के माध्यम से किस प्रकार सम्बोधित किया जा सकता है। इस सुरक्षा चौकसी में साफ़ पानी, शौचालय, नाली व कूड़ा फेंकने की जगह व शौचालय सुविधाएं शामिल की गई हैं। इस पुस्तिका के माध्यम से महिलाएं स्थानीय सेवादाताओं से मौजूदा ज़रूरी सेवाओं में परिवर्तन करने की ज़रूरत पर चर्चाएं करके साझे निर्णय ले सकती हैं। महिला सुरक्षा चौकसी की यह भागीदारी रणनीति दिल्ली के निम्न आय क्षेत्रें में रहने वाली महिलाओं के अनुभवों के आधार पर तैयार की गई है। परन्तु इसका उपयोग अन्य शहरों में ज़रूरी सेवाएं मुहैय्या कराने के लिए किया जा सकता है।

भाषा: अंग्रेज़ी • मूल्य: 50/- रुपए

दोनों बुकमार्क्स मुफ्त वितरण के लिए

तीनों पोस्टर्स मूल्य: रुपए 30/- प्रति पोस्टर

प्रतियां मंगवाने के लिए संपर्क करें:
महाबीर सिंह, जागोरी
दूरभाष: 011-26691219/20 • distribution@jagori.org

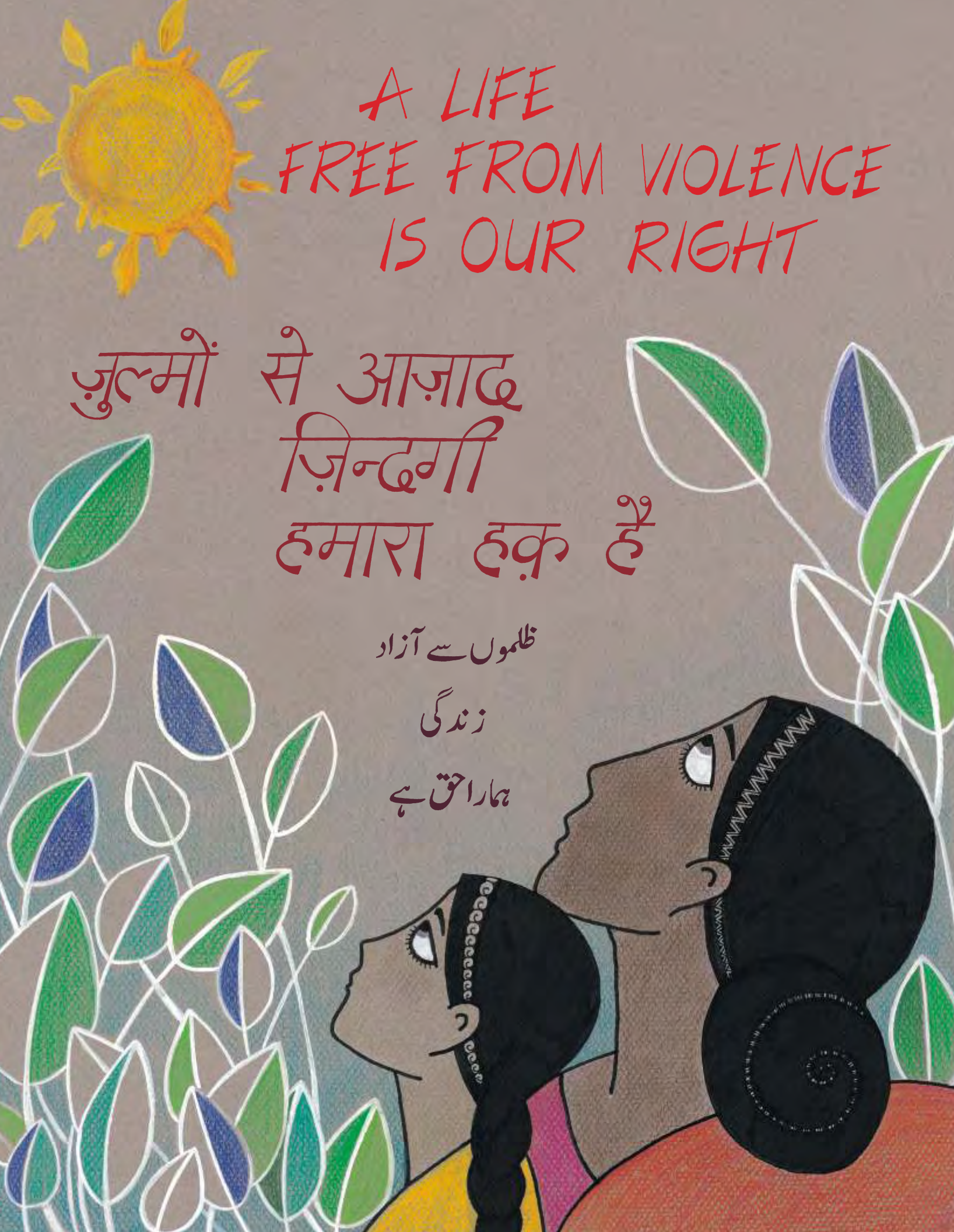

A LIFE
FREE FROM VIOLENCE
IS OUR RIGHT
ज़ुल्मों से आज़ाद
ज़िन्दगी
हमारा हक़ है
ظلموں سے آزاد
زندگی
ہمارا حق ہے